भारत में आर्थिक सुधार : हम कहां हैं और कहां जायेंगे?*

राकेश मोहन

आर्थिक सुधारों को हमारे यहां डेढ़ दशक हो गया है। अतः यह उपयुक्त समय होगा जब हमें पीछे मुड़कर स्थिति का जायजा लेना चाहिए कि हमने अब तक क्या किया है तथा आगे क्या करना बाकी है। अतः मैं आज यह प्रयास करूंगा कि (क) जो किया गया है उसकी समीक्षा करूंगा, (ख) हम कहां हैं इसका आकलन करूंगा तथा (ग) हमें कहां जाने की जरूरत है, उसका सुझाव दूंगा।

मैं आपको उस पृष्ठभूमि के बारे में बताना चाहूंगा कि मैंने यह विषय क्यों चुना । हाल ही में मैंने मेल कॉम ग्लेडवैल की पुस्तक '' दि टिपिंग पाइंट : हाउ लिटिल थिंग्स मेक ए बिग डिफरेंस'' पढ़ी । वह बताते हैं कि कभी-कभी अनेक बड़े-बड़े परिवर्तन जल्दबाजी में हो जाते हैं । जबकि छोटे-छोटे परिवर्तन कदम-दर-कदम सामान्यतः क्रमिक प्रक्रिया में होते हैं। किसी महामारी को फैलने में कोई हल्का-सा बिंदु मिल जाता है और वह अचानक फैल जाता है। मैं ऐसा मानता हूं कि वर्तमान स्थिति में हमें परिवर्तन और वृद्धि की ऐसी ही महामारी की जरूरत है। शायद हम उसी हल्के-से बिंदु पर हैं। किसी स्वस्थ परिवेश की व्यापक नींव डाली जा चुकी है और अब हमें वे छोटी-छोटी चीजें करनी हैं जो बड़ा अंतर ला देती हैं।

I. क्या किया जा चुका है

भारत में या कहीं भी समग्र आर्थिक सुधारों की प्रक्रिया का मुख्य उद्देश्य क्या थे या क्या हो सकते हैं? मुख्य या प्राथमिक उद्देश्य है - गरीबी का तेजी से उन्मूलन करने के साथ-साथ आर्थिक वृद्धि की समग्र वृद्धि की गति को तेज करना । इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के साधन अर्थव्यवस्था में प्रतिस्पर्धा का इन्जेक्शन लगाना होगा ताकि बेहतर दक्षता और उत्पादकता के लाभ मिल सकें तथा मानव संसाधनों के विकास के माध्यम से क्षमता निर्माण की समर्पित भावना से प्रयास करने की जरूरत होगी।

मैं अपनी बात की शुरूआत इतिहास की व्यापक कूची से करता हूं। 1947 में हमारी आज़ादी से लगभग 50 से 100 वर्षों तक संपूर्ण भारतीय उप-महाद्वीप में शायद ही कोई उल्लेखनीय वृद्धि हुई हो। प्रति व्यक्ति आय अवरूद्ध थी, और सम्भवतः उस सारी अवधि में गिरती ही जा रही थी। आज़ादी के बाद वार्षिक प्रति व्यक्ति आय इस दीर्घकालीन नींद के बाद बढ़नी शुरू हुई और 1980 तक लगभग 30 वर्षों के दौरान यह 1 से 1.5 प्रतिशत के दायरे में रही। 1980 के बाद यह बढ़कर लगभग 3-4 प्रतिशत की हो गई जोकि हमारे पुराने इतिहास में दर्ज रिकार्ड से काफी हट कर है। इस बदलाव के साथ-साथ भावी आर्थिक नीति के लिए रणनीति बनाने की दृष्टि से एक नईसोच पैदा हुई। जैसा कि हुआ 1980 के दशक के बाद के अंतिम वर्षों में आर्थिक संकट पूर्णतः फूट पड़ा; भुगतान संतुलन भारी दबाव में आ गया तथा सरकार की ओर से विदेशी देयताओं को चुकाने में चूक होने का वास्तविक खतरा हमारे ऊपर मडरा रहा था। 1980 के दशक के बाद राजकोषीय घाटा काफी बढ़ गया और मुद्रास्फीति 17-18 प्रतिशत के आसपास पहुंच गई थी। इन दुर्भाग्यपूर्ण गतिविधियों ने हमारे दिमागों को अभूतपूर्व रूप से आक्रान्त कर लिया था। भारत का यह गौरवशाली इतिहास रहा है कि उसने अपने अंतरराष्ट्रीय उद्देश्यों में कभी चूक नहीं की है, हमारा राजकोषीय प्रबंधन ऐतिहासिक रूप से रूढ़िवादी रहा है और मुद्रास्फीति शायद ही कभी 10 प्रतिशत से आगे बढ़ी हो।

इसके परिणामस्वरूप सुधारों की सारी प्रक्रिया 1991 में शुरू कर दी गई।

सबसे पहले मैं गत 15 वर्षों में हुए विभिन्न सुधारों का संक्षिप्त ब्यौरा दूंगा और फिर उनकी प्रभावशीलता के बारे में बात करूंगा। स्पष्टीकरण की सुविधा के लिए मैं (क) व्यापक आर्थिक सुधारों और (ख) व्यष्टिगत आर्थिक सुधारों में अवधारणागत अंतर को स्पष्ट करूंगा।

व्यापक आर्थिक सुधार और राजकोषीय स्थिरीकरण

1950, 1960 और 1970 के बाद के दशकों में अर्थव्यवस्था बहुत अधिक नियंत्रित और रूढ़िबद्ध हो गई थी; इसके परिणामस्वरूप उद्यमशीलता अत्यधिक बाधित और सीमित हो गई थी। आयात प्रतिस्थापन्नता वाली अन्तर्मुखी विकास की रणनीति जो 1950 और 1960 के बाद के दशकों में

* डॉ. राकेश मोहन, उप गवर्नर, भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा 10 नवंबर 2006 को सिंगापुर में इंस्टिट्यूट ऑफ साउथ एशिया स्टड़ीज़ द्वारा आयोजित सार्वजनिक सेमीनार में दिया गया व्याख्यान । यहां व्यक्त विचार उनके व्यक्तिगत विचार हैं।

प्रासंगिक चली आ रही थी, वह आज के वैश्वीकरण की दुनिया में प्रासंगिक नहीं रह गई थी। अतः नवीन ढांचे की स्थापना के लिए समग्र सुधारों की प्रक्रिया को शुरू करना पड़ा। काफी दायरे वाले क्षेत्रीय सुधारों के साथ-साथ समष्टिगत आर्थिक सुधारों को भी शुरू किया गया। समष्टिगत या व्यापक आर्थिक सुधारों को निम्न भागों में बांटा जा सकता है (क) राजकोषीय नीति, (ख) मौद्रिक नीति, (ग) व्यापार नीति तथा (घ) विनिमय दर प्रबंधन। इनको विस्तार से बताने का दावा किए बगैर मैं इनका विवरण संदर्भ के अनुसार रखूंगा।

राजकोषीय प्रणाली

भारत में कर-प्रणाली प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों ही बड़ी जटिल हो गई थीं। अधिकतम मार्जिनल व्यक्तिगत आय कर की दरें उच्च थीं साथ ही विभिन्न आय के दायरों के लिए विभिन्न दरें थीं। कम्पनी-कर की दरें भी ऊंची थीं। तदनुसार, कर-संहिता का अनेक प्रकार के आय के लिए छूटों के लिए विशेष प्रावधानों से बोझिल था और कम्पनी-कर की संहिता छूटों और प्रोत्साहनों से भरी पड़ी थी। उच्च दरों और जटिलताओं के कारण, कर-बचाने तथा कर-बंचना स्वाभाविक रूप से उच्च थी। इसके फलस्वरूप, संपूर्ण सुधार की अवधि के दौरान वैयक्तिक आय-कर और कंपनी कर दोनों को क्रमिक रूप से घटाते हुए 30 प्रतिशत पर लाया गया तथा उसमें काफी सरलीकरण किया गया।

इसी प्रकार, अप्रत्यक्ष करों के मामले में, उत्पाद शुल्क और सीमा-शुल्क दोनों की दरें उच्च स्तरों पर थीं जिसमें विभिन्न पण्यों के लिए अलग-अलग दरें थीं। पुनः इसने विभिन्न प्रकार के उत्पादकों और अंतिम उपयोगकर्ताओं के लिए विशिष्ट प्रावधानों तथा छूटों की आवश्यकताओं को जन्म दिया जिससे भारी प्रशासनिक जटिलताएं पैदा हो गयीं। पिछले 15 वर्षों से व्यापक और निरंतर सुधारों का एक व्यापक कार्यक्रम चलाना पड़ा। सीमा शुल्क के मामले में दरों को 1991 के 110 प्रतिशत से घटाकर (जिसमें उच्चतम 400 प्रतिशत था) कृषि से इतर क्षेत्रों के लिए 2006 में 12.5 प्रतिशत तक ले आया गया। उत्पाद शुल्क की संरचना में भारी सरलीकरण किया गया ताकि उसे कुछ छूटों जैसे खाद्य उत्पाद, सूती वस्त्र और कुछ आप्टीकल फाइबरों के लिए जिस पर निम्नतर कर दरें लागू हैं) के अलावा, 16 प्रतिशत का केंद्रीय कर (सेनबेट) की दर को प्राप्त किया जा सके। उत्पाद शुल्क जो विनिर्माण होने के चरण में लगाया जाता है अब उस पर (मूल्यवर्धित कर) 'वेट' कर लागू होगा। ताकि कर-वंचना को बचाया जा सके। इसके अलावा, समग्र अर्थ व्यवस्था पर अधिक उपयुक्त रूप से कर लगाने के लिए तथा एक क्षेत्र पर अर्थात विनिर्माण क्षेत्र पर अत्यधिक निर्भरता को कम करने के लिए सेवा कर शुरू किया गया है। इस प्रकार के कर-सुधारां में विशेषकर, लंबा समय लगता है।

अंतिम और सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण उपाय जो 2004 में शुरू किया गया है वह है - राजकोषीय उत्तरदायित्व और बजट प्रबंध अधिनियम (एफआरबीएम); जो सरकार को अपने राजस्व के घाटे को समाप्त करने तथा अपने राजकोषीय घाटे को घटाकर 2009 तक सदेउ के 3 प्रतिशत पर लाने के लिए बाध्य करता है। इसी प्रकार के अधिनियम अधिकांश राज्य सरकारों (अब तक 23) द्वारा भी पारित किए गए हैं। इस प्रकार राजकोषीय उत्तरदायित्व अब हमारी वैधानिक वचनबद्धता का हिस्सा बन गया है। संघीय आधार पर दूसरी सबसे उल्लेखनीय गतिविधि है - राज्यस्तरीय बिक्री कर को मूल्यवर्धित (वेट) के रूप में अंतरित करना जिसने राज्यों की कर-प्रणाली में तर्क-सम्मतता और एकरूपता के अनेक उपाय शुरू किए हैं। विविध दरों और विशेष प्रावधानों के रूप में राज्यों की बिक्री कर-प्रणाली को भी नुकसान पहुंचा है। इस कर-सुधार की एक महत्वपूर्ण विशेषता सभी राज्यों के बीच परस्पर विचार-विमर्श करने की प्रक्रिया रही है। जैसा कि केंद्र सरकार द्वारा इसमें मध्यस्थ का कार्य किया गया जो भारी भरकम सुधारों के लिए इस पर सहमति लेकर आए।

समग्र राजकोषीय सुधारों की प्रक्रिया जो गत 15 वर्षों से केंद्र और राज्य स्तर को दोनों के स्तर पर हो रही है, वह वस्तुतः उसे व्यापक दायरा प्रदान कर देती है।

मौद्रिक नीति

1970 के बाद और 1980 के बाद के दशकों में, जैसा कि हम जानते हैं, मौद्रिक नीति का लगभग कोई अस्तित्व ही नहीं रह गया था, जिसमें ऋण के आबंटन, विभिन्न प्रयोजनों के लिए नियंत्रित और विभिन्न ब्याज की दरें, राजकोषीय घाटे का स्वतः मौद्रीकरण, तथा बैंकों के संसाधनों का पूर्वक्रय करते हुए वित्तीय दबाव की प्रणाली कार्यरत थी।

अतः अनेक उपाय करने पड़े। उनमें शामिल हैं - स्वतः मौद्रीकरण की समाप्ति, बैंकों के ऋण देनेयोग्य संसाधनों में सांविधिक रूप से पूर्वक्रय में कमी तथा ब्याज दरों का अपविनियमन। इन उपायों के फलस्वरूप मौद्रिक नीति तथा केंद्रीय बैंक की स्वतंत्रता को पुनः बहाल किया गया। मौद्रिक नीति के व्यवहारों में ये परिवर्तन अपनी प्रभावशीलता को मुद्रास्फीति में भारी कमी के रूप में देखा जा सकता है। वस्तुतः यदि आजादी के बाद की अवधि को दो भागों में बांट कर देखा जाए तो इसमें पहला है 1950 के बाद के दशक के प्रारंभ से 1990 के दशक के अंतिम वर्षों तक और दूसरा 1990 के बाद के दशक के अंतिम वर्षों से लेकर अब तक का। तो इन दोनों अवधियों के बीच मुद्रास्फीति की औसत दरों के बीच भारी अंतर देखा जा सकता है। जहां पहले 45 वर्षों तक यह लगभग 7-8 प्रतिशत रही, जबकि 1990 के दशक की अंतिम वर्षों में अब तक यह गिरकर 5 प्रतिशत औसत दर के आसपास आ गई है।

बाह्य क्षेत्र के सुधार

यह 1991 का भुगतान संतुलन का संकट ही था जिसने सुधारों के लिए मुख्य प्रेरक के रूप में कार्य किया। इसके फलस्वरूप बाह्य क्षेत्र में की गई कार्रवाईयां सर्वाधिक महत्व की रहीं। उच्च स्तरों के प्रशुल्कों के साथ-साथ व्यापक मात्रात्मक व्यापार प्रतिबंधों के बावजूद, भुगतान संतुलन 1960, 1970 और 1980 के बाद के दशकों में निरंतर दबाव में बना रहा। जिसके फलस्वरूप बाह्य आघात जैसे तेल मूल्यों में वृद्धि, या मानसून की खराबी (असफलता) ने अनिवार्यतः भारी संकट की ओर बढ़ा दिया जिसने अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष के संसाधनों का सहारा लेना अनिवार्य बना दिया। इन व्यापार प्रतिबंधों के होते हुए, विनिमय दर काफी लंबे समय से अतिमूल्यित हो गई थी। अतः सुधारों का पहला प्रयास था 1991 में विनिमय दर का पूर्ववर्ती वास्तविक अवमूल्यन तथा विनिमय दर व्यवस्था का उस घिसिटती नियंत्रित व्यवस्था से बाजार द्वारा निर्धारित व्यवस्था की ओर बढ़ना, हालांकि इसे कुछ सीमा तक व्यवस्थित करना पड़ा।

व्यापार व्यवस्था में भारी बदलाव आये जिसमें प्रशुल्क की दरों को तर्कसम्मत बनाने के साथ-साथ मात्रात्मक प्रतिबंधों को हटा दिया गया। प्रशुल्क की दरों की संख्या में भारी कमी की गई तथा गैर-कृषि उत्पादों के लिए प्रशुल्क की उच्चतम दरों को 400 प्रतिशत से घटाते हुए उन्हें 12.5 प्रतिशत तक ले आया गया। कृषि उत्पादों के लिए प्रशुल्क की दरों में सुधारों में बाधा विकसित देशों द्वारा अपनी फार्म सब्सिडी में कमी लाने की हिचक के कारण पैदा हुई। अंतरराष्ट्रीय रूप से, भारत ने हमेशा से विश्व व्यापार संगठन की चर्चाओं में सक्रियतापूर्वक भाग लिया है। अभी हाल ही में, वैश्विक व्यापार सुधारों के लिए और आगे सहमति प्राप्त करने में आये व्यवधान के कारण भारत ने भी अनेक क्षेत्रीय और द्विपक्षीय व्यापार वार्ताओं में, जो चलने शुरू हुई हैं, भाग लेना शुरू कर दिया है।

विनिमय दर व्यवस्था में परिवर्तन आने तथा व्यापार सुधारों के पूर्ण होने के साथ अब चालू खाता मुक्त कर दिया गया है और साथ ही पूंजी खाते की परिवर्तनीयता को भी कुछ सीमा तक खोल दिया गया है। विनिमय दर व्यवस्था में अब बिना किसी निश्चित दर के लक्ष्य के तीव्र उद्वेगशीलता की व्यवस्था करने तथा अंतर्निहित मांग और आपूर्ति की स्थितियों को देखते हुए विनिमय दर को एक व्यवस्थित रूप में बनाये रखने पर ध्यान केंद्रित किया गया है।

व्यष्टिगत आर्थिक सुधार

अब मैं व्यष्टिगत आर्थिक सुधारों पर आता हूं। औद्योगिक अप-विनियमन, बुनियादी संरचनागत सुधार, वित्तीय क्षेत्र का सुदृढ़ीकरण, पूंजी बाजार को गहन बनाना और कृषि से कुछ ऐसे क्षेत्र हैं जहां सुधार हुए हैं।

औद्योगिक नीति

वस्तुतः औद्योगिक क्षेत्र के व्यापक अप-विनियमन ने जुलाई 1991 में सुधारों का पहला मुख्य पैकेज बनाया, उद्योगों को क्षमता के लिए लाईसेंस देने की बासी प्रणाली को बंद कर दिया गया । बड़ी कम्पनियों के विस्तार पर विद्यमान वैधानिक परिवर्तनों को हटा दिया गया; चरणबद्ध विनिर्माण कार्यक्रम रोक दिए गए तथा केवल सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा निवेश के लिए आरक्षित अनेक बुनियादी उद्योगों से आरक्षण हटा लिए गए। साथ ही साथ, विदेशी प्रौद्योगिकी के आयात पर जो प्रतिबंध लगे थे, उन्हें हटा दिया गया, और अब तक निरुत्साहित की जानेवाली व्यवस्था की जगह सीमित विदेशी स्वामित्व वाली विदेशी प्रत्यक्ष निवेश का स्वागत करने वाली नईव्यवस्था की शुरुआत की गई। 1991 में एक ही झटके में शुरू किए गए इन भारी सुधारों के साथ एक ऐसे नीतिगत ढांचे के लिए मंच तैयार किया गया जिसने नईप्रविष्टियों को प्रोत्साहित किया, नईप्रतिस्पर्धा को लागू किया, घरेलू और विदेशी दोनों प्रकार की, जिसने समय के साथ-साथ उद्योग में काफी महत्तर दक्षता की प्राप्ति को लागू किया। औद्योगिक सुधारों का एक क्षेत्र जिसमें प्रतिबंधों को हटाने में धीमी गति रहीं और जो अधिकांशतः श्रमिकों का उपयोग करने वाले उद्योगों में निवेश पर विद्यमान है, वह लघु उद्योग के लिए आरक्षण के लिए जाना जाता है। 1991 में लगभग 836 उद्योग केवल छोटी फर्मों द्वारा निवेश किए जाने के लिए आरक्षित किए गए । जिनका निर्धारण उनके निवेश के स्तर से किया गया। अब इन उद्योगों की संख्या कम होकर 326 रह गई है।

बुनियादी संरचना

बुनियादी संरचना के विकास के लिए 1996 से अनेक उपाय शुरू किए गए। इनमें से अनेक सुधार 1980 के बाद के मध्य दशक में आयी भारत बुनियादी संरचना रिपोर्ट से पैदा हुए । हमने यह माना था कि बुनियादी संरचना में निवेश को बढ़ाने की जरूरत है और हमने बुनियादी संरचना में निजी क्षेत्र को भी शामिल करने की शुरूआत करने की सिफारिश की थी जिस पर इससे पहले प्रतिबंध था। यह 1990 के बाद के दशक के दौरान विश्व व्यापी अभियान का एक भाग था। इसने अन्य व्यापक दायरे में सुधारों की आवश्यकता जतायी जिसमें नए विधानों और विनियामक प्राधिकरणों का निर्माण भी शामिल है।

अपविनियमन, निजी क्षेत्र की शुरूआत तथा भारतीय टेलीकाम विनियामक प्राधिकरण (ट्राई) के निर्माण के साथ टेलीकाम अब एक सफलता की गाथा है। रोडवेज़ में प्रमुख सुधार थे : राजमार्गों के निर्माण का वित्तपोषण करने के लिए ईंधन-कर लगाना; राष्ट्रीय राजमार्ग विकास परियोजना की शुरूआत करना तथा प्रधान मंत्री की ग्राम सड़क योजना या ग्रामीण सड़क कार्यक्रम)। बंदरगाहों के मामले में, निजी

परिचालकों को शुरू किया गया है और इसके बाद प्रमुख बंदरगाह प्रशुल्क प्राधिकरण (टीएएमपी) गठित किया गया; सिविल हवाई उड्डयन में नईनिजी एअरलाइन्स, नए प्राइवेट एयरपोर्ट तथा नईखुले हवाई मार्गों की नीति इसके प्रमाण हैं। इन सभी मामलों में प्रतिक्रिया सकारात्मक या अनुकूल रही है।

अन्य बुनियादी सुविधा क्षेत्रों में सुधारों की प्रक्रिया का अनुभव मिला-जुला रहा है। पावर क्षेत्र में जहां 1990 के बाद के प्रारम्भिक वर्षों में सुधारों के प्रारम्भिक प्रयास किए गए थे, वहीं इसके विस्तार को सीमित करने की समस्यायें बनी रहीं। एक व्यापक आधुनिक बिजली अधिनियम बनाया गया है, जिसमें जो निजी क्षेत्र की सहभागिता को प्रोत्साहित करने में समर्थ बनाने वाले प्रावधान हैं, जिसमें प्रतिस्पर्धा तथा इसके तर्क-सम्मत विनियमन को बढ़ाया है। तथापि केंद्रीय विनियामक प्राधिकरण तथा राज्य स्तरों पर ऐसे ही अन्य प्राधिकरणों के बनाये जाने के बावजूद प्रशुल्क सुधारों को लागू करना आसान नहीं पाया गया है। राज्य बिजली बोर्ड अभी भी हानियां उठा रहे हैं जो प्रशुल्कों के अपर्याप्त होने तथा संप्रेषण और वितरण (इसमें चोरी से होनेवाली हानि का बड़ा भाग है), दोनों से होनेवाली हानियां शामिल हैं। फलस्वरूप, बिजली निर्माण में निजी क्षेत्र की भागीदारी भुगतानों में असुरक्षा झेल रही है और इसलिए इस क्षेत्र में निजी क्षेत्र की भागीदारी में विस्तार सीमित रहा है। हालांकि अधिनियम के अंतर्गत संवितरण में भी निजी सहभागिता की अनुमति है। व्यवहारिक रूप से वितरण प्रणालियों का निजीकरण आसान नहीं पाया गया है। इस प्रकार बिजली सुधारों का अभी कोई रास्ता निकालना होगा हालांकि वैधानिक तथा संस्थागत पूर्वापेक्षाएं अब स्थापित हैं।

शहरी बुनियादी संरचना दूसरा क्षेत्र है जहां सुधार अपर्याप्त रहे हैं और इस दिशा में सोचने का कार्य अब शुरू हुआ है। परिवहन में, हवाई और सड़क परिवहन के क्षेत्र में पर्याप्त सुधार हो चुके हैं। परंतु रेलवे में सुधारों की गुंजाईश है। हालांकि गत कुछ वर्षों में रेलवे के वित्तीय निष्पादन में उल्लेखनीय सुधार हुआ है, फिर भी इस महत्वपूर्ण परिवहन प्रणाली को सुदृढ़ सतत वृद्धि पथ पर लाने के लिए बहुत बड़े संरचनात्मक सुधारों की जरूरत है।

वित्तीय क्षेत्र

वित्तीय क्षेत्र के सुधार भारत की सफलता की दूसरी गाथा है। वित्तीय क्षेत्र के सुधारों का एक प्रमुख तत्व है प्रतिस्पर्धा बढ़ाने वाले उपायों की शुरूआत। परिचालनगत स्वायत्तता तथा सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों में सार्वजनिक स्वामित्व में आंशिक विनिवेश, नए निजी और विदेशी बैंकों का प्रवेश, तथा विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के लिए अनुमति तथा बैंकिंग में संविभागीय निवेश इस क्षेत्र के कुछ प्रमुख सुधार के उपाय हैं। इस संबंध में सभी सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों का सूचीबद्धीकरण एक अन्य महत्वपूर्ण उपाय है। इसके अलावा, विवेक-सम्मत विनियमन को बासल I के मानदंडों के अनुसार सुदृढ़ किया गया और अब उन्हें बासल II के मानदंडों के अनुसार उन्नत किया जा रहा है। अंतरराष्ट्रीय सर्वोत्तम संव्यवहारों जैसे सीआरएआर, प्रावधानीकरण और आय की पहचान संबंधी मानदंडों तथा एक्सपोजर सीमाएं तथा जोखिम प्रबंधन को सुदृढ़ करने के उपायों को चरणबद्ध रूप में लागू करने के लिए प्रयास किए गए हैं।

सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों में निजी क्षेत्र के आंशिक स्वामित्व की शुरूआत और उसके बाद उनका सूचीबद्धीकरण इन बैंकों के बाजारोन्मुखीकरण तथा उनके खातों और परिचालनों में पारदर्शिता अत्यधिक महत्वपूर्ण रही है। बैंकिंग क्षेत्र के सुधारों की इस क्रमिक प्रक्रिया ने बैंकिंग प्रणाली के वित्तीय स्वास्थ्य के सर्वांगीण सुधार के लिए उल्लेखनीय रूप से योगदान किया है।

वित्तीय क्षेत्र के अन्य घटकों में, नई नीजी बीमा कंपनियों की शुरूआत की गई हैं जिनमें सीमित विदेशी स्वामित्व है। 1950 और 1960 के बाद के दशकों में संपूर्ण बीमा कारोबार सार्वजनिक क्षेत्र में था और उसमें भी केवल एक ही जीवन बीमा कंपनी और चार साधारण बीमा कंपनियां थीं। नईप्रतिस्पर्धा की शुरूआत ने नए उत्पादों और नए संव्यवहारों की ओर प्रेरित किया। एक नया विनियामक बीमा विनियमन और विकास प्राधिकरण (आईआरडीए) (इर्डा) बनाया गया है जो बीमा उद्योग को संचालित करेगा।

पूंजी बाजार के नीति संबंधी सुधारों तथा वित्तीय बुनियादी सुविधा विकास दोनों के साथ पुनर्बहाली की गई। भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड को पूंजी बाजार के विनियामक के रूप में गठित किया गया, एक नईआधुनिक प्रौद्योगिकी उन्मुखी स्टाक एक्सचेंज (राष्ट्रीय स्टॉक एक्सचेंज (एनएससी) का गठन किया गया; निजी क्षेत्र में पारस्परिक निधियों के गठन की अनुमति देकर उन्हें प्रोत्साहित किया गया। साथ ही साथ पूंजी निर्गम नियंत्रक (सीसीआई) को समाप्त कर दिया गया जो प्रतिभूतियों का बीमा और उनके मूल्यों को नियंत्रित करता था। स्टॉक बाजार और सरकारी प्रतिभूति बाजार में एक विश्वस्तरीय भुगतान एवं निपटान प्रणाली का निर्माण एक खास विकास रहा है। एक क्षेत्र जिसमें अभी भी पर्याप्त ध्यान और उसके विकास की गुंजाईश है, वह है कंपनी बांड बाजार ।

कृषि

कृषि क्षेत्र मुख्य उल्लेखनीय क्षेत्र है जिसमें अभी तक व्यापक सुधार नहीं किए गए हैं । इसे व्यापक रूप में नहीं समझा गया है कि औद्योगिक

प्रशुल्कों में कटौती ने कृषि के लिए घरेलू व्यापार की स्थिति में काफी सुधार किया है। कृषि में व्यापार सुधारों की दृष्टि से अपनी फार्म सब्सिडी में कटौती करने में विकसित देशों के दुराग्रह तथा विश्व व्यापार संगठन में प्रगति की कमी के द्वारा बाधा बनी हुई है। तथापि अनेक उल्लेखनीय सुधार हुए हैं - जैसे खाद्यानों की अंतर्प्रान्तीय आवागमन पर प्रतिबंधों को हटाना, सार्वजनिक वितरण प्रणाली का पुनर्विन्यास, अनिवार्य वस्तु अधिनियम के अंतर्गत प्रतिबंधों को शिथिल करना, अधिकांश कृषि पण्यों में वायदा व्यापार की शुरूआत, फसली उत्पादों पर कुछ विपणन संबंधी प्रतिबंधों को हटाना । तथापि इसमें कोई संदेह नहीं है कि कृषि विकास पर और अधिक ध्यान देने की जरूरत है ताकि कुछ सीमा तक अवरूद्ध हुई कृषि अर्थव्यवस्था को पुनः बहाल किया जा सके।

सुधारों के उपायों का विहगावलोकन करने के पश्चात अब मैं इन व्यापक सुधारों की प्रक्रिया के परिणामों पर चर्चा करना चाहूंगा ।

II. हम कहां हैं?

हमें यह जानने की जरूरत है कि अपनी आजादी के समय भारत कहां था? बिजली की क्षमता अब के मुकाबले मात्र 1.1 प्रतिशत थी, देश वस्तुतः अंधकारमय था! मृत्यु की उच्च दरों के साथ औसत भारतीय 32 वर्ष की उम्र में मर जाता था। आधे से ज्यादा देश गरीबी की रेखा के नीचे था। अब औसत परिवार की आय 1,30,000 रु. के आसपास है।गरीबी को 1999-2000 में 23-26 प्रतिशत तक कम कर दिया गया। प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि की दर आजादी के बाद के पहले 30 वर्षों की 1.5 प्रति व्यक्ति वार्षिक से बढ़कर अब प्रति व्यक्ति लगभग 6.4 प्रतिशत हो गई है। यह लोगों के जीवन स्तर में दर्शनीय सुधार दर्शाता है (सारणी 1, 2 और 3)।

आजादी के बाद से भारत की उपलब्धियों के प्रमुख कारकों की रूपरेखा बताने के बाद मैं अब विभिन्न व्यापक नीति संबंधी परिवर्तनों में मोटी-मोटी प्रवृत्तियों की समीक्षा करूंगा ।

सारणी 1 : भारत की प्रगति के चुनिंदा संकेतक

वर्ष	प्रति व्यक्ति आय (1993-94 के मूल्यों पर)	गरीबी (प्रतिशत)	साक्षरता (प्रतिशत)	जीवन प्रत्याशा वर्ष	बिजली क्षमता (मेगावाट)
1951	3,687	45	18	32	1,362
1961	4,429	45	28	41	4,653
1971	5,002	52	34	46	14,709
1981	5,352	43	44	50	30,214
1991	7,321	35	52	59	64,000
2001	10,308	26	65	65	102,000
2005	12,414	19.3 *	..	..	118,419

* वर्ष 2007 के लिए पूर्वानुमान

सारणी 2 : भारतीय वृद्धि का अनुभव

(प्रतिशत)

क्षेत्र	कृषि	उद्योग	सेवा	सदेउ	प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय
1951-52 से 1960-61	3.1	6.1	4.6	3.9	1.9
1961-62 से 1970-71	2.5	5.4	4.9	3.7	1.3
1971-72 से 1980-81	1.8	4.4	4.2	3.2	0.8
1981-82 से 1990-91	3.1	7.6	6.7	5.6	3.2
Crisis Year:					
1991-92	*-1.5*	*-1.2*	*4.5*	*1.3*	*-1.5*
1992-93 से 2001-02*	*3.4*	*6.1*	*7.7*	*6.1*	*4.1*
2002-03 से 2005-06*	*1.9*	*8.3*	*8.7*	*7.0*	*5.6*

* 1999-2000 तक के आंकड़ों का आधार वर्ष 1993-94 है और 2000-02 से आगे के आंकड़ों का आधार वर्ष 1999-2000 है।

स्रोत : केंद्रीय सांख्यिकी संगठन

अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर में तेजी घरेलू निवेश में सदेउ के 30 प्रतिशत वृद्धि के कारण हुई जो मुख्य रूप से घरेलू बचतों द्वारा वित्तपोषित थी। 1990 के दशक के उत्तरार्द्ध में कुछ अवरोध आने के बाद 2004-05 तक घरेलू बचतें 29 प्रतिशत से भी ज्यादा की गति से बढ़ीं। हाल के वर्षों में समग्र बचतों में वृद्धि को सार्वजनिक क्षेत्र की बचतों में आये समग्र बचतों में सुधार से लाभ मिला। 1998-99 और 2002-03 के बीच ऋणात्मक बचत जोकि सरकारी प्रशासन की बचतों में आयी तेज गिरावट के कारण थी, से पलट कर सार्वजनिक क्षेत्र की बचतें पुनः 2003-04 से सकारात्मक हो गयीं, जो मुख्यतः राजकोषीय समेकन को दर्शाती है। 2004-05 में सार्वजनिक क्षेत्र की बचतों की दर 2.2 प्रतिशत थी, परंतु अभी भी यह 1976-77 में पहुंची लगभग 5 प्रतिशत की सर्वोच्च दर के आधे से भी कम है। कंपनी लाभप्रदता में 2002-03 के बाद के सुधार ने भी हाल के वर्षों में घरेलू बचतों में सुधार लाने में योगदान किया है। पारिवारिक बचतों ने घरेलू बचतों में महत्वपूर्ण योगदान किया, जो 2004-05 के समग्र घरेलू बचतों में इनका योगदान तीन चौथाई आता है। भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए निरंतर उच्चतर वृद्धि प्राप्त करने के लिए समग्र बचतों में और भी सुधार का होना आवश्यक है और इस संदर्भ में सार्वजनिक क्षेत्र की बचतों को एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करनी होगी (सारणी 4)।

सारणी 3: गरीबी रेखा से नीचे के लोगों का प्रतिशत

(प्रतिशत)

	1987-88	1993-94	1999-2000	2007 के लिए पूर्वानुमान
ग्रामीण	39.1	37.3	27.1	21.1
शहरी	38.2	32.4	23.6	15.1

स्रोत : आर्थिक सर्वेक्षण 2002-03

सारणी 4 : समग्र तथा सार्वजनिक क्षेत्र की बचतें और निवेश

(सदेउ के प्रति प्रतिशत)

वर्ष	समग्र		सार्वजनिक क्षेत्र	
	बचतें	निवेश	बचतें	निवेश
1980-81	18.9	20.3	3.4	8.4
1981-82	18.6	20.1	4.5	10.1
1982-83	18.3	19.6	4.3	10.7
1983-84	17.6	18.7	3.3	9.7
1984-85	18.8	20.1	2.8	10.4
1985-86	19.5	21.7	3.2	10.8
1986-87	18.9	21.0	2.7	11.2
1987-88	20.6	22.5	2.2	9.5
1988-89	20.9	23.8	2.1	9.5
1989-90	22.0	24.5	1.7	9.5
1990-91	23.1	26.3	1.1	9.3
1991-92	22.0	22.6	2.0	8.8
1992-93	21.8	23.6	1.6	8.6
1993-94	22.5	23.1	0.6	8.2
1994-95	24.8	26.0	1.7	8.7
1995-96	25.1	26.9	2.0	7.7
1996-97	23.2	24.5	1.7	7.0
1997-98	23.1	24.6	1.3	6.6
1998-99	21.5	22.6	-1.0	6.6
1999-00	24.9	26.0	-0.9	7.5
2000-01	23.5	24.2	-1.8	6.9
2001-02	23.6	23.0	-2.0	6.9
2002-03	26.5	25.3	-0.7	6.2
2003-04	28.9	27.2	1.0	6.5
2004-05	29.1	30.1	2.2	7.2

स्रोत : राष्ट्रीय लेखा सांख्यिकी, केंद्रीय सांख्यिकी संगठन

सारणी 5 : केंद्र सरकार के चुनिंदा राजकोषीय संकेतक

(सदेउ के प्रति प्रतिशत)

	सकल राजकोषीय घाटा	राजस्व घाटा	प्रत्यक्ष कर	अप्रत्यक्ष कर	कुल कर	ब्याज अदायगी	सब्सिडी
1991-92	5.6	2.5	2.3	8.0	10.3	4.1	1.9
1992-93	5.4	2.5	2.4	7.5	10.0	4.2	1.4
1993-94	7.0	3.8	2.4	6.5	8.8	4.3	1.4
1994-95	5.7	3.1	2.7	6.5	9.1	4.4	1.2
1995-96	5.1	2.5	2.8	6.5	9.4	4.2	1.1
1996-97	4.9	2.4	2.8	6.6	9.4	4.3	1.1
1997-98	5.8	3.1	3.2	6.0	9.1	4.3	1.2
1998-99	6.5	3.8	2.7	5.6	8.3	4.5	1.4
1999-00	5.3	3.5	3.0	5.8	8.8	4.6	1.3
2000-01	5.6	4.0	3.2	5.7	8.9	4.7	1.3
2001-02	6.2	4.4	3.0	5.2	8.2	4.7	1.4
2002-03	5.9	4.4	3.4	5.4	8.8	4.8	1.8
2003-04	4.5	3.6	3.8	5.4	9.2	4.5	1.6
2004-05	4.0	2.5	4.3	5.5	9.8	4.1	1.4
2005-06	4.1	2.7	4.7	5.7	10.4	3.7	1.4
2006-07(ब.अ.)	3.8	2.1	5.3	5.9	11.2	3.5	1.2

ब.अ : बजट अनुमान

राजकोषीय कार्य-निष्पादन में अभी कुछ और किया जाना बाकी है। सकल राजकोषीय घाटा 1993-94 के 7 प्रतिशत से गिरकर 2005-06 में 4.1 प्रतिशत रह गया है। तथापि इसे 2009 तक 3 प्रतिशत तक लाना है। कर-राजस्व सदेउ के लगभग 10 प्रतिशत तक पहुंचा है जो 1991-92 के स्तर पर है, और इसमें काफी वृद्धि की जरूरत है (सारणी 5) । मुद्रास्फीति 45 वर्षों की औसत 7-8 प्रतिशत से गिरकर 4.5-5.0 प्रतिशत रह गई है। अतः हमने कुछ खास व्यापक आर्थिक और मौद्रिक सुधार प्राप्त कर लिये हैं। तथापि वृद्धि के लिए निवेश और बचतों की जरूरत है। हालांकि वृद्धि की प्रक्रिया 1990 के बाद के दशक के उत्तरार्ध में तथा इस दशक के प्रारम्भिक वर्षों में लड़खड़ा गई है। अब यह स्पष्टतः बहाल हो चुकी है और अब हम 8 प्रतिशत से अधिक की वार्षिक सदेउ वृद्धि को निरंतर बनाये रखने के पथ पर हैं। 1997 में वेतन आयोग के निर्णय के बाद सार्वजनिक वित्त दबाव में आ गए हैं अतः सार्वजनिक क्षेत्र की बचतें नकारात्मक हो गई थीं। इसके साथ ही साथ कारोबारी चक्र में मंदी भी रही तथा निजी कंपनी क्षेत्र में निम्न लाभप्रदता और निम्न कंपनी बचतें भी रहीं। अब इन दोनों में बहाली हो गई है। सार्वजनिक खेत्र की बचतें अब पुनः सकारात्मक हो गई हैं तथा कंपनी लाभप्रदता भी बहुत स्वस्थ हो गई है। पारिवारिक बचतों में निरंतर वृद्धि के साथ सकल घरेलू बचतें, सकल व घरेलू बचतें अब 30 प्रतिशत से ऊपर हैं और इसलिए निरंतर निवेश की दरें 32 प्रतिशत के ऊपर व्यवहार्य हैं उच्चतर वृद्धि के बने रहने के लिए सार्वजनिक निवेश में सार्वजनिक सेवाओं की सुपुर्दगी में सुधार की जरूरत है।

सामान्यतः वित्तीय क्षेत्र के सुधार और विशेषकर बैंकिंग क्षेत्र के सुधारों की प्रक्रिया में मुख्य भाग रहे हैं।[1] इन सुधारों के फलस्वरूप बैंकों के सांविधिक पूर्वक्रय (उच्च नकदी प्रारक्षित और सांविधिक चलनिधि अनुपात के रूप में) को काफी सीमा तक घटा दिया गया उसी सीमा तक वित्तीय मंदी को भी । रोचक रूप से भारतीय बैंकों की आस्ति गुणवत्ता में काफी मात्रा में सुधार हुआ है। इसके साथ ही बैंकों की जोखिम भारित आस्तियों का पूंजी अनुपात (सीआरएआर) में उल्लेखनीय रूप से सुधरा है जो निर्धारित स्तर (9 प्रतिशत) से काफी ऊंचा है तथा गैर-निष्पादक आस्तियों के स्तरों में भारी गिरावट, हालांकि 2004 में अतिदेय अवधि का मानदंड घटाकर 90 दिन का कर दिया गया था (सारणी 6)। सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों में सरकार द्वारा प्रारम्भिक पुनर्पूंजीकरण तुलनात्मक रूप से बहुत कम (सदेउ के मात्र 1 प्रतिशत) रहा है, जिसका समर्थन सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों द्वारा इक्विटी निर्गम से समर्थन मिला। भारत में अब सार्वजनिक क्षेत्र

[1] मैंने अन्यत्र भारतीय वित्तीय क्षेत्र के मुद्दों पर चर्चा की है : देखें मोहन, राकेश (2004) : ''वित्तीय क्षेत्र के सुधार तथा मौद्रिक नीति : भारतीय अनुभव'' भारिबैंक बुलेटिन अक्तूबर 2004 ।

सारणी 6 : भारतीय बैंकिंग सुधारों के संकेतक

(प्रतिशत)

	आस्तियों की गुणवत्ता		प्रतिस्पर्धा की मात्रा (कुल बैंक आस्तियों में प्रतिशत अंश)		
	सकल एनपीएल/ आस्तियां	निवल एनपीएल/ आस्तियां	विदेशी बैंक	निजी क्षेत्र के बैंक	सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक
1996-97	7.0	3.3	7.9	7.7	84.4
2000-01	4.9	2.5	7.9	12.6	79.5
2002-03	4.0	1.8	6.9	17.5	75.7
2003-04	3.3	1.2	6.9	18.6	74.5
2004-05	2.5	0.9	6.5	18.2	75.3
2005-06	1.9	0.7	7.2	20.4	72.3

स्रोत : भा.रि.बैंक

के बैंकों को सार्वजनिक सूचीबद्धीकरण अब बाजार अनुशासन के अधीन है। इसके अलावा, सुधारों के बाद में उत्पादकता में उल्लेखनीय सुधार हुआ है जैसा विभिन्न संकेतकों जैसे प्रति कर्मचारी कारोबार, प्रति व्यक्ति लाभ तथा शाखा उत्पादकता में दिखाई देता है। इन उत्पादकता लाभों में प्रौद्योगिकी में सुधार तथा भारी दबाव या आकर्षण के प्रभाव दोनों का योगदान है।

अब मैं संक्षेप में विदेशी क्षेत्र पर बात करूंगा। बाह्य क्षेत्र के संबंध में किए गए उपाय स्पष्टतः काफी सफल रहे हैं। वणिक निर्यात 1990-91 और 2005-06 के बीच सदेउ के 6 प्रतिशत से बढ़कर 13 प्रतिशत हो गए हैं। इसी अवधि में आयात भी सदेउ के 10 प्रतिशत से बढ़कर 24 प्रतिशत हो गए हैं, विदेशी भंडार भी 1.5 बिलियन अम.डालर से बढ़कर 165 बिलि.अम. डालर का हो गया।

औद्योगिक नीति में किए गए प्रचुर सुधारों के तत्काल बाद 1992-97 की अवधि के दौरान औद्योगिक वृद्धि बहुत उच्च रही, तथापि 1997-2002 की अवधि के दौरान इसमें काफी गिरावट रही। जैसे ही प्रशुल्कों में कमी की गई, आयातों पर से नियंत्रण हटाये गए तथा घरेलू प्रतिस्पर्धी चुनौतियों भी उसी समय उभरीं। 1991 के वास्तविक अवमूल्यन के पूर्ववर्ती प्रारम्भिक संरक्षणात्मक प्रभाव निष्प्रभावी कर दिए गए और भारतीय कंपनी क्षेत्र, विशेषकर विनिर्माण क्षेत्र ने अपने आपको कठिनाई में पाया। अतः भारतीय कंपनी क्षेत्र उल्लेखनीय रूप से तकनीकी पुनर्संरचना, कारोबारी प्रक्रिया की पुनर्संरचना तथा वित्तीय पुनर्संरचना एक साथ सभी प्रकार के कांटों में फंस गया। अब यह कहा जा सकता हैं कि हालांकि इसका परिणाम उस समय औद्योगिक मंदी के रूप में हुआ, परंतु जैसा कि अब देखा जा रहा है इसने उद्योगों की प्रतिस्पर्धात्तकता को उभारने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। विनिर्माण क्षेत्र में पुनःबहाली आ रही है। उद्योग क्षेत्र के प्रत्येक घटक में अब कोई न कोई प्रतिस्पर्धी कंपनी देखी जा सकती है। इस प्रतिस्पर्धात्मकता के संकेतक के रूप में निर्यात 20 प्रतिशत से भी ज्यादा की गति से बढ़ रहे हैं तथा चीन के संदर्भ में भुगतान संतुलन लगभग सम है (सारणी 7)।

भारतीय कंपनी क्षेत्र का कार्य-निष्पादन गत तीन वर्षों में काफी उत्साहवर्धक रहा है। पहले जहां कंपनी क्षेत्र द्वारा ऐसा स्वस्थ कार्य-निष्पादन दर्शाया गया था, वह 1990 के बाद के दशक के प्रारम्भिक वर्षों में था। अर्थात भारत में आर्थिक सुधारों के कार्यक्रम को प्रारम्भ करने के तुरंत बाद के वर्षों में, परंतु 1990 के दशक के बाद के वर्षों

सारणी 7 : भारतीय खुलेपन के कुछ संकेतक

(सदेउ का प्रतिशत)

	वस्तुओं का निर्यात	वस्तुओं का आयात	सेवाओं का निर्यात	सेवाओं का आयात	अंतरणों और आय की प्राप्तियां	अंतरणों का भुगतान और आय	चालू प्राप्तियां	चालू भुगतान	चालू खाता शेष
1990-91	5.8	8.8	1.4	1.1	0.9	1.3	8.2	11.2	-3.1
1991-92	6.9	7.9	1.9	1.4	1.7	1.5	10.5	10.8	-0.3
1992-93	7.3	9.6	1.8	1.5	1.8	1.5	10.9	12.6	-1.7
1993-94	8.3	9.8	1.9	1.7	2.2	1.3	12.4	12.8	-0.4
1994-95	8.3	11.1	1.9	1.7	2.9	1.3	13.1	14.2	-1.0
1995-96	9.1	12.3	2.1	2.1	2.9	1.3	14.1	15.8	-1.7
1996-97	8.9	12.7	1.9	1.8	3.6	1.2	14.4	15.6	-1.2
1997-98	8.7	12.5	2.3	2.0	3.4	1.3	14.4	15.8	-1.4
1998-99	8.3	11.5	3.2	2.7	3.0	1.3	14.5	15.5	-1.0
1999-00	8.3	12.3	3.5	2.6	3.2	1.2	15.0	16.1	-1.0
2000-01	9.9	12.6	3.5	3.2	3.5	1.7	16.9	17.4	-0.6
2001-02	9.4	11.8	3.6	2.9	4.1	1.7	17.0	16.3	0.7
2002-03	10.6	12.7	4.1	3.4	4.2	1.5	18.9	17.6	1.3
2003-04	11.0	13.3	4.5	2.8	4.4	1.5	19.9	17.6	2.3
2004-05	12.2	17.1	6.2	4.0	3.8	1.5	22.2	22.6	-0.4
2005-06	13.1	19.6	7.6	4.8	3.9	1.5	24.6	26.0	-1.3

स्रोत : भा.रि.बैं.

में लगभग 1997 में आम आर्थिक मंदी के अनुरूप इसमें भी गिरावट आ गई थी। उसके बाद से यह बहाली सभी महत्वपूर्ण मापदंडों के अनुसार उल्लेखनीय रही है, चाहे वह बिक्री हो या सकल लाभ, या कर-पूर्व लाभ सभी ने 2002-03, 2003-04, और 2004-05 के दौरान भारी वृद्धि की दरें दर्ज की हैं। जिसका तात्पर्य है कि कंपनी क्षेत्र में आर्थिक गतिविधि ने 1999-2000, 2000-01 और 2001-02 के दौरान मंद कार्य-निष्पादन के तीन वर्षों के बाद पहिया पूरा घूम गया है (सारणी 8)।

कंपनी क्षेत्र का यह प्रचुर चालू कार्यनिष्पादन चौथे साल भी जारी रहा जैसा कि 2006-07 की पहली तिमाही के परिणामों से देखा जा सकता है। सुदृढ़ बिक्रीगत कार्य-निष्पादन समग्र रूप में सुदृढ़ कार्य-निष्पादन से समृद्ध भारतीय कंपनी क्षेत्र के सकल लाभ जून 2006 को समाप्त तिमाही में 34 प्रतिशत की उच्च दर से बढ़े जो वर्ष 2005-06 के पूरे राजकोषीय वर्ष में दर्ज 20 प्रतिशत की वृद्धि के और ऊपर थे। समग्रतः ब्याज दरों में नरमी और निम्नतर ऋण इक्विटी अनुपात के कारण परिणामस्वरूप ब्याजगत लागत कम होती रही है जोकि सचेत नीति प्रेरित उपायों का परिणाम है।

वस्तुतः माहौल में एक नया विश्वास भरा है। मैं उसके कुछ उदाहरण देना चाहूंगा - टिस्को न्यूनतम कीमत वाला स्टील उत्पादक है। हिंडाल्को/स्टरलाइट/नेलको प्रतिस्पर्धी एलमोनियम उत्पादक है; रिलायेंस प्रमुख पेट्रोकेमिकल उत्पादक है। अब हम अधिकांश क्षेत्रों में विश्व स्तर के उत्पादकों में हैं और ऐसी अन्य अनेक सफलता की गाथाएं हैं । मोजर बायर रु. 1000 करोड़ से भी अधिक के निर्यात करता है; हीरो होंडा 1.7 मिलियन मोटर साइकिल के उत्पादन के साथ मोटर साइकिलों का सबसे बड़ा निर्माता

सारणी 8 : कंपनी कार्य निष्पादन के चुनिंदा संकेतक

(प्रतिशत)

	बिक्री में वृद्धि (वर्ष दर वर्ष)	करोत्तर वृद्धि (वर्ष दर वर्ष)	कार्यकारी पूंजी/बिक्री	ऋण /बिक्री
1995-95	29.9	55.4	52.2	50.8
1995-96	19.4	22.7	53.2	47.7
1996-97	19.3	-0.5	54.8	47.8
1997-98	6.1	13.5	51.9	49.6
1998-99	13.8	-2.8	50.0	43.8
1999-2000	21.6	9.2	47.6	37.8
2000-01	22.9	23.6	42.2	31.8
2001-02	3.7	0.2	41.1	31.3
2002-03	16.2	51.8	43.2	27.1
2003-04	13.0	30.7	39.5	25.0
2004-05	18.5	28.4	24.7	52.6

स्रोत : प्रोवेस, भारतीय अर्थव्यवस्था निगरानी केंद्र

है। अब भारत में अनेक प्रकार के आटोमोबाइल्स उपलब्ध हैं जैसे - मारुति, टाटा, हुन्डुई, टोयटा, जीएम, फोर्ड; फार्मा क्षेत्र में रेनबेक्सी तथा डा.रेड्डी प्रमुख हैं : भारत फोर्ज सभी मुख्य ओटो उत्पादकों को काटिंग्स और फोर्जिंग्स का निर्यात करता हैं , सुंदरम क्लेटोन को जीएम का सर्वोत्तम आपूर्तिकर्ता माना गया है।

अब मैं समग्र सुधार कार्यक्रमों की सफलता की मोटी रूपरेखा संक्षेप में रखना चाहूंगा । आम तौर पर सुधार कार्यक्रम ने उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की है। सुधारों के शुरू होने से लेकर सभी 15 वर्षों के दौरान वार्षिक औसत सदेउ की वृद्धि 6 से 6.5 प्रतिशत रही है और अब 8 प्रतिशत से अधिक की उच्च वृद्धि दर के रास्ते पर है। बाह्य क्षेत्र सुविधाजनक है; विदेशी मुद्रा की सतत 'कमी' के दिन लद गए हैं। इसके विपरीत, कुछ समीक्षक भारत के विदेशी मुद्रा भण्डार की स्थिति को प्रचुरता की समस्या मानते हैं। औद्योगिक वृद्धि पुनः बहाल हो चुकी है और विनिर्माण क्षेत्र ने प्रतिस्पर्धात्मकता; गुणवत्ता और दक्षता के नए स्तरों को प्राप्त कर लिया है। भारतीय अर्थव्यवस्था की बाह्य छबि में रूपांतरण हो चुका है। अब इसे इसकी संभावित वहनीय उच्च वृद्धि में कुछ शक्ति और विश्वास की भावना से देखा जाता है। अंतिम, मापी गई गरीबी को काफी सीमा तक कम कर दिया गया है।

परंतु हमें अभी भी काफी लंबा रास्ता तय करना है। 23-26 प्रतिशत का गरीबी का अनुपात अभी भी बहुत उच्च है। लगभग 25 करोड़ व्यक्ति अभी गरीबी में रह रहे हैं। रोजगार में वृद्धि अपर्याप्त है और हमारे पास नौजवान श्रमिक शक्ति बढ़ रही है; जो अच्छे रोजगार की मांग करेगी। सार्वजनिक सेवा सुपुर्दगी अभी भी खराब है, जिसमें सुधार के कोई संकेत नहीं हैं।

अब मैं उन मदों की ओर चलना चाहूंगा जो हमें अभी करनी हैं ।

III. हमें कहां जाना है?

हमने आर्थिक सुधारों के 15 वर्ष पूरे कर लिये हैं और पांच सरकारें देख ली हैं। इन सुधारों से क्या प्राप्त किया है? हमने उच्च वृद्धि का पथ प्राप्त कर लिया है; गरीबी घटी है; बाह्य क्षेत्र अभी काफी सुभीतापूर्ण है, औद्योगिक वृद्धि पुनः प्राप्त कर ली गई है और ये सभी वित्तीय स्थिरता के साथ प्राप्त किए गए हैं। इन सभी स्मरणीय परिवर्तनों के परिणामस्वरूप विश्व में भारत के लिए नया सम्मान प्राप्त हुआ है; इस से भी अधिक महत्वपूर्ण है कि चारों ओर आत्मविश्वास का नया स्तर प्राप्त कर लिया है।

परंतु अभी भी हमें लम्बा रास्ता तय करना है। हमें निरंतर वृद्धि के अगले स्तर की ओर बढ़ने की जरूरत है ताकि प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि

सात प्रतिशत वार्षिक से अधिक की वृद्धि या निरंतर आधार पर 8.5 प्रतिशत वार्षिक की सदेउ की वृद्धि प्राप्त की जा सके और उसके द्वारा प्रत्येक दशक में इसे दुगना करना है। हालांकि गरीबी काफी घट कर 25 प्रतिशत से कम रह गई है, यह स्तर भी अभी काफी ऊंचा है जिसमें लगभग 250 मिलियन लोग अभी भी गरीबी रेखा से नीचे रह रहे हैं जो अपने आप में बहुत निम्न स्तर पर है।

अब तक किए गए अधिकांश सुधारों का मुख्य संगठनात्मक सिद्धांत यह रहा है कि निजी क्षेत्र को उन असंख्य सरकारी नियंत्रणों से मुक्त किया जाये जो काफी लम्बे समय से चले आ रहे थे। जहां यह प्रक्रिया अपने आप में अभी काफी लम्बा समय तक चल सकती है, वहीं, इस व्यापक अपविनियमन और प्रतिस्पर्धा की शुरुआत से आर्थिक क्षेत्र के अधिकांश घटकों में यह काफी दर्शनीय रही है जिसने सभी स्तरों पर और देश के अधिकांश भागों में उद्यमी ऊर्जा को जागृत किया है। हम तर्कसम्मत रूप में उन सभी उद्देश्यों में सफल रहे हैं जो हमने अभी तक अपने लिए निर्धारित किए थे जिसमें बढ़ी हुई प्रतिस्पर्धा और दक्षता के लाभ अपने आपको उच्चतर दर्ज वृद्धि में, विशेषकर वर्तमान दशक में प्रदर्शित कर रहे हैं।

अब मुद्दा यह उठता है कि क्या हम निजी क्षेत्र द्वारा प्रेरित निवेश और उत्पाद वृद्धि की सीमा तक पहुंच चुके हैं ? क्या यह अब उत्तरोत्तर रूप में सार्वजनिक निवेश - भौतिक और सामाजिक दोनों रूपों में, कमी से बाधित होगी? अब सभी बाधाओं को समाहित करते हुए अंतर्निहित मुख्य मुद्दा है - सार्वजनिक सेवाओं में, गुणवत्ता और मात्रा, दोनों ही दृष्टियों से, पर्याप्त सुपुर्दगी की कमी। सार्वजनिक सेवा प्रणाली वस्तुतः काम ही नहीं कर रही है।

आर्थिक वृद्धि में और तेजी लाना तथा गरीबी में और कमी लाना, इन दोनों के लिए महत्तर निवेश और रोजगार में वृद्धि के साथ-साथ उत्पादकता में वृद्धि की जरूरत होगी। इस तेज गति को लाने के लिए हमें क्षमता निर्माण में वृद्धि और सार्वजनिक सेवाओं की उपलब्धता को बढ़ाना होगा जो कि निजी क्षेत्र प्रदान नहीं कर सकता।

अतः मेरा मानना है कि जैसे सुधारों के पहले दौर ने निजी क्षेत्र को कार्य-निष्पादन के लिए शक्ति सम्पन्न बनाया क्योंकि यह अपनी योग्यताओं की सीमा तक जा सकता है, वैसे ही आर्थिक सुधारों के दूसरे दौर को सार्वजनिक क्षेत्र को शक्ति संपन्न बनाना चाहिए ताकि वह निजी क्षेत्र के सभी घटकों, निगमित संस्थाओं और सार्वजनिक क्षेत्र सभी के समान रूप से हित के लिए सार्वजनिक वस्तुओं और सेवाओं की सुपुर्दगी कर सके। कहीं इस मन्तव्य को गलत न समझ लिया जाए मैं सार्वजनिक क्षेत्र को महत्तर रूप से शक्ति संपन्न बनाने की वकालत नहीं कर रहा हूं कि यह पहले की तरह अर्थव्यवस्था पर अपने नियंत्रण को बढ़ाए। 'सार्वजनिक क्षेत्र' को इसकी व्यापकतम परिभाषा में देखा जाना चाहिए जिसमें स्थानीय प्रशासन, राज्य से लेकर राष्ट्रीय स्तर तक उसकी सभी संस्थाएं शामिल हैं, जो सार्वजनिक माल और सेवाएं प्रदान करती हैं।

उदाहरण के रूप में, मैं चार क्षेत्रों को लेना चाहता हूं, जहां हमें ध्यान केंद्रित करना है और जो मेरे अनुसार सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा किया जाना है, भले ही इनमें से कुछ में निजी क्षेत्र की भागीदारी भी हों।

ये चार क्षेत्र जिनका मैं उल्लेख करना चाहूंगा, वे हैं; कृषि का विकास, शहरी विकास, मानव संसाधन विकास, सार्वजनिक सेवाओं का प्रबंधन।

इन सभी क्षेत्रों में जो सामान्य है वह है - सार्वजनिक प्रणालियों में सक्षमता का अभाव, जो इन क्षेत्रों का संचालन करती है। कुछ अन्य क्षेत्र भी हैं - व्यापक संचालन के, जिन्हें भी लिया जा सकता है विशेषकर कानून व्यवस्था को बनाए रखना, परंतु वह अर्थव्यवस्था से जुड़ी मेरी सक्षमता क्षेत्र से बाहर है।

कृषि

हाल की वृद्धि के अनुभव में सबसे ज्यादा परेशान करने वाली जो विशेषता रही है, वह है - कृषि की वृद्धि में गिरावट (सारणी-9)।

जहां 60 प्रतिशत से भी ज्यादा जनसंख्या अभी भी कृषि पर निर्भर है, इस गिरावट का स्पष्टतः गरीबी के स्तर में कमी लाने की मंद गति रहने पर उल्लेखनीय प्रभाव पड़ा है, अन्यथा स्थिति दूसरी रही होती। इसके अलावा, सकल वार्षिक सदेउ की वृद्धि निरंतर आधार पर 8.5 प्रतिशत से रखना कठिन होगा यदि स्वयं कृषि की वृद्धि 4 प्रतिशत वार्षिक से अधिक नहीं रहती है। पूर्वी और दक्षिण-पूर्व एशिया की तेजी से बढ़ती

सारणी 9 : कृषि उत्पादन में वृद्धि और मूल्यवर्धन

(प्रतिशत)

अवधि	कृषि में सदेउ	कृषि तथा संबंधित गतिविधियों में सदेउ	कृषि उत्पादन का सूचकांक
1950 के बाद	3.0	2.7	3.7
1950 के बाद	2.5	2.5	2.9
1970 के बाद	1.4	1.3	1.4
1980 के बाद	4.7	4.4	5.2
1990 के बाद	3.1	3.0	2.3
2000 के बाद का दशक	2.0 @	2.3 $	-1.6 #

@ : 2000-01 से 2004-05 के लिए नई शृंखला के अनुसार (आधार:1999-2000=100)

$: 2000-01 से 2005-06 के लिए

: कृषि उत्पादन के लिए सूचकांक (आधार 1981-82=100 को समाप्त तीन वर्ष) उसमें 2000-01 से 2004-05 तक की अवधि शामिल है।

स्रोत : 1. राष्ट्रीय लेखा सांख्यिकी
2. कृषि मंत्रालय, भारत सरकार

अर्थव्यवस्थाओं सभी ने अपनी तेज वृद्धि की अवधि के दौरान औद्योगिक और सेवा क्षेत्र की वृद्धि के साथ-साथ कृषि में उच्चतर वृद्धि के स्तर दर्शाये। उच्चतर कृषि वृद्धि ग्रामीण परिवारों की आयों में भी तेजी से वृद्धि करेगी जिससे ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में समान रूप से वस्तुओं और सेवाओं की महत्तर मांग में वृद्धि करेगी जो रोजगार को बढ़ाने वाली होगी।

यह समझने के लिए कि उच्चतर कृषि की वृद्धि की संभावना का क्षेत्र कहां पर विद्यमान हो सकता है, यह उपयोगी होगा कि कृषि पण्यों की मांग और आपूर्ति दोनों के लिए वृद्धि के स्वरूप को संक्षिप्त रूप में परखा जाए।

पहले आपूर्ति का क्षेत्र लिया जाए। 1960 के बाद के दशक के मध्य में लम्बे सूखे के बाद, उस अवधि में खाद्य की सुरक्षा में गम्भीर कठिनाइयां अनुभव की गयीं। सरकार ने तत्काल आपातिक कार्यक्रम शुरू किए ताकि बुनियादी खाद्यान्नों का उत्पादन तेज किया जा सके। सौभाग्य से इसके साथ-साथ उच्च उत्पादवाली चावल और गेहूं की किस्मों की अंतरराष्ट्रीय रूप से खोज की गई जिसने हरित क्रांति को संभव बना दिया। इस प्रकार चावल और गेहू के उत्पादन में वृद्धि ने सतत आधार पर स्थान ले लिया जिसे उल्लेखनीय उत्पादनगत लाभों और अनाज के उत्पादन के लिए समर्पित क्षेत्र में विस्तार करके प्राप्त किया गया। हरित क्रांति के सफल विकास ने देश को ढाई दशक से ज्यादा अवधि में कृषि में वृद्धि तथा खाद्य सुरक्षा, दोनों प्रदान कीं। तथापि हाल के वर्षों में अनाजों में उत्पादन वृद्धि में काफी अवरोध आ गया और उत्पादनगत और आगे वृद्धि को प्राप्त करना उत्तरोत्तर कठिन होता जा रहा है।

उतना ही उल्लेखनीय परिवर्तन मांग की तरफ भी देखा जा सकता है। बढ़ती हुई आयों के साथ, जैसा कि आशा की जा सकती है, ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों दोनों में, भारतीय भोजन में प्रगामी रूप से विशाखीकरण हो रहा है जो अनाजों से गैर-अनाजों की तरफ जा रहा है। वास्तव में, निर्धनतम व्यक्ति के लिए आयों में प्रारंभिक वृद्धि खाद्यान्नों की मांग को बढ़ाती है और निम्न गुणवत्ता वाले अनाजों से उच्च गुणवत्ता वाले अनाजों जैसे गेहूं और चावल की मांग की ओर बढ़ती है। जैसे-जैसे आय और बढ़ती है तो गैर-खाद्यान्नों की जैसे दूध, फल और सब्जियों की मांग बढ़ती हैं। और जो शाकाहारी नहीं हैं, उनके लिए मछली, मुर्गी उत्पाद और मांस की मांग बढ़ती है। इसलिए यह समझने की जरूरत है कि जहां आपूर्ति की ओर अनाजों के उत्पादन में निरंतर वृद्धि को समर्थन देने में प्रौद्योगिकी की सीमाएं हैं; वहीं मांग की ओर से भी अनाजों की निरंतर वृद्धि के लिए सीमाएं हैं। यह स्वीकार करना होगा कि एक विशेष प्रकार के मांसों के लिए मांग में बदलाव जानवरों के उत्पादन के लिए खाद्य स्टॉक के विशेष प्रकारों की मांग में वृद्धि होगी। तथापि, नीति के लिए मुख्य मुद्दा यह है कि कृषि उत्पादन में तेजी केवल अनाजों से ही नहीं आ सकती, यदि मांग और आपूर्ति दोनों ओर की सीमाओं को ध्यान में रखा जाए। इतना होते हुए भी अनाजों के उत्पादन में पिछले दस वर्षों में जो अवरोध आया है उससे निपटने की तत्काल जरूरत है।

तब क्या किया जाना चाहिए? हम तीस साल पहले अपनाये गए दृष्टिकोण से सीख ले सकते हैं जो अभी भी हमारी नीति संबंधी सोच को नियंत्रित करता है। हरित क्रांति की सफलता समन्वित नीति संबंधी पैकेज को अपनाने से प्राप्त की गई, जिसने उत्पादन की आवश्यकता को राष्ट्रीय स्तर पर निपटाया। साथ ही साथ आवश्यक प्रौद्योगिकीगत निविष्टियों, बुनियादी संरचनाओं, निविष्टिगत आपूर्तियों तथा समय पर ऋण की सुपुर्दगी के लिए प्रावधान किए गए थे। प्रौद्योगिकीगत निविष्टियां सारे देश में कृषि विश्वविद्यालय स्थापित करके प्रदान की गई जिन्हें आगे अंतरराष्ट्रीय कृषि अनुसंधान प्रणाली तथा विदेशी तदनुकूल कृषि विश्वविद्यालयों से जोड़ा गया, विशेषकर अमरीका के भूमि अनुदान कालिजों और विश्व विद्यालयों से। प्रौद्योगिकी की प्रयोगशाला से खेतों तक लाने के लिए कृषि विस्तार प्रणालियों पर संगष्ठियां की गयीं, पहले सघन कृषि जिला कार्यक्रम (आइएडीपी) के अंतर्गत और बाद में, सघन कृषि क्षेत्र कार्यक्रम (आइएएपी) के अंतर्गत। काफी समय तक अनुसंधान और विस्तार प्रणालियां, दोनों काफी प्रभावी सिद्ध हुईं, परंतु बाद में उनका प्रभाव कम हो गया। बुनियादी सुविधा का प्रावधान जमीनी पानी से सिंचाई के विस्तार के लिए अनिवार्य रूप से आवश्यक था जिसमें पम्प सैटों को चलाने के लिए इलैक्ट्रिसिटी की भारी उपलब्धता की जरूरत थी। फलस्वरूप भारी स्तर पर ग्रामीण विद्युतीकरण कार्यक्रम की शुरूआत की गई जिसमें किसानों को खेती के लिए घटी दरों पर बिजली का प्रावधान भी किया गया। इसके लिए जिन मुख्य नईनिविष्टयों की जरूरत थी, वे थीं - बीज, उर्वरक, पम्प सैट और ट्रेक्टर। इन निविष्टियों की आपूर्ति किए जाने के अलावा तदनुरूप किसानों को इन निविष्टियों की खरीद के लिए समर्थ बनाने हेतु किसानों को उपयुक्त ऋण सुपुर्दगी के लिए व्यवस्थाएं की गयीं। बैंकों का राष्ट्रीयकरण, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का गठन, तथा जो ग्रामीण सकारी बैंकों का संचालन करने के लिए राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड) का गठन ये सभी प्रयास हरित क्रांति को तेज करने के लिए ऋण की सुपुर्दगी में भारी बदलाव लाने की दिशा में थे। इनमें से अधिकांश गतिविधियां राज्य सरकारों और सार्वजनिक क्षेत्र की एजेंसियों के साथ उपयुक्त समन्वय करते हुए राष्ट्रीय आधार पर चलायी गयीं। इस कार्यक्रम को दी गई उच्चतम प्राथमिकता को देखते हुए, इसने काम किया।

दूसरी हरित क्रांति की जरूरत

अब जरूरत है उसी के अनुरूप दूसरी हरित क्रांति की, परंतु एक ऐसी क्रांति की जो काफी ज्यादा विविधता पूर्ण होगी। भारतीय भोजन (आहार) में बढ़ते हुए विशाखीकरण के साथ, सभी तरह के गैर-अनाज खाद्य पदार्थों के उत्पादन में वृद्धि में तेजी के लिए भारी संभावनाएं हैं, हालांकि उनका स्तर अलग-अलग हो सकता है। सभी क्षेत्रों में जैसे डेयरी, कृषि, कृषि बागवानी (फलों और सब्जियों दोनों के लिए), जलचर खेती, मत्स्य पालन, मुर्गी पालन, मांस, यहां तक कि मद्य पदार्थों, नईकृषि क्रांति की जरूरत है। इसी प्रकार खाद्येतर कृषि में भी वृद्धि को तेज करने की सभी संभावनाएं हैं। इन सभी क्षेत्रों में आय और रोज़गार निर्माण के लिए अनेक प्रकार की नई गतिविधियों तथा व्यापक स्तर पर नवोन्मेष के निर्माण के लिए काफी वितरण आधार पर भारी संभावनाएं हैं।

इसे कैसे प्राप्त किया जा सकता है? हरित क्रांति और श्वेत क्रांति (दुग्ध उत्पादन) दोनों से संबंधित राष्ट्रीय कार्यक्रम की सफलता के पीछे एक मुख्य विशेषता अनाज उत्पादन और दुग्ध उत्पादन के बीच प्रकृतिगत अपेक्षाकृत समरूपता थी। अतः यह संभव था कि राष्ट्रीय कार्यक्रम बनाया जाये जो सारे देश में लागू करनेयोग्य था जिसमें क्षेत्रीय विविधताएं अपेक्षाकृत कम थीं। नईकृषि संबंधी गतिविधियों के लिए कार्यक्रम बनाने में कठिनाई यह है कि ये उत्पाद बड़ी विषम प्रकृति के हैं और साथ ही वे क्षेत्रीय विविधताओं से पूर्ण हैं ।

प्रत्येक अलग-अलग गतिविधि के लिए भी जैसे मुर्गी पालन के उत्पादन को लें, ऐसे राष्ट्रीय कार्यक्रम को बनाने में कठिनाई होगी जिसने हरित और श्वेत क्रांति में सहायता की थी। अब जरूरत इस बात की है कि अलग-अलग अनेक गतिविधियों के लिए ऐसे विकेन्द्रीकृत पैकेज बनाये जाएं जिन्हें क्षेत्रीय आधार पर अलग-अलग किया जा सके। व्यापक दृष्टिकोण समान हो सकता है। प्रत्येक पैकेज को प्रौद्योगिकीगत निविष्टियों, बुनियादी संरचनाओं निविष्टियों की आपूर्ति तथा उससे सम्बद्धऋण सुपुर्दगी के लिए समानान्तर रूप से प्रावधान करने होंगे। जबकि पैकेज को विशाखीकृत और विकेंद्रीकृत बनाना होगा। परंतु यह संभव नहीं है कि उनका विकास राष्ट्रव्यापी समन्वित कार्यक्रम को मिशनरी आधार पर पहल किए बिना बनाया जा सकता है। ऐसे कार्यक्रम के लिए प्रत्येक गतिविधि और स्थान के लिए विशेषज्ञों की टीम बनाई जाये। वह अनिवार्य होगा कि देशी और अंतरराष्ट्रीय दोनों स्तरों पर उच्च स्तर के विशेषज्ञता को एकजुट किया जाए और साथ ही उसमें स्थानीय पेशेवरों को भी शामिल किया जाए। प्रत्येक टीम अपनी-अपनी गतिविधि और स्थल के लिए अपनी-अपनी पैकेज बनायेगी। अब सारे देश में 35 वर्ष पहले की अपेक्षा कहीं अधिक विशेषज्ञता उपलब्ध है।

इस प्रकार के अलग-अलग परंतु समन्वित कार्यक्रमों के साथ कृषि अनुसंधान के पुनर्नवीकरण के लिए एक प्रमुख नईपहल की जरूरत है और यह भी क्षेत्रीय आधार पर वितरित हो। कृषि विश्वविद्यालयों के तत्काल नवोन्मेषन के लिए जिसे अंतरराष्ट्रीय रूप से भी समर्थन की जरूरत है, एक संक्षिप्त कार्यक्रम चलाए जाने की जरूरत है। प्रधान मंत्री की पहल पर अमरीकी अनुसंधान प्रणाली के साथ इसको नए सिरे से जोड़ने की पहल की शुरूआत पहले ही कर दी गई है। इन विश्वविद्यालयों को पुनः सम्मानजनक बनाना होगा। उन्हें अपनी अपनी स्थानीयता के अनुसार विशिष्ट गतिविधियों में विशेषज्ञ भी बनाना होगा। इन नवोन्मेषित विश्वविद्यालयों से तथा अन्य स्रोतों से भी प्रौद्योगिकी का अंतरण को प्रत्येक गतिविधि के अनुरूप विशिष्ट बनाना होगा तथा विस्तारकारी गतिविधियों के नए रूपों का पता लगाना होगा ताकि अधिकतम प्रभावशीलता प्राप्त की जा सके। निजी क्षेत्र में उत्तरोत्तर रूप में विशेषज्ञता उपलब्ध है तथा सहकारी क्षेत्र में भी। अतः सार्वजनिक और निजी क्षेत्र की सहभागिता के नए रूप का पता लगाना होगा जैसा कि दूध के बारे में राष्ट्रीय डेयरी डवलपमेंट बोर्ड ने पहल की थी।

बैंकिंग प्रणाली को भी इन नईकृषि गतिविधियों के लिए तथा साथ ही उनकी सम्बद्ध गतिविधियों के लिए दक्ष ऋण सुर्पुदगी प्रणाली प्राप्त करने के लिए नए अर्थोपाय ढूंढ़ने होंगे। जैसे-जैसे ये प्रणालियां विकसित होती जाती हैं जो खेती से बाजार की आपूर्ति सरणि के वित्तपोषण की भी जरूरत होगी जैसे गोदाम, शीतगृह, ग्रामीण परिवहन, फ्रिजयुक्त ट्रक और मध्यवर्ती सभी सेवाएं ग्रामीण क्षेत्रों में अलग-अलग रूप में दक्ष ऋण सुर्पुदगी प्रणाली पर विशेष ध्यान देना होगा ताकि मध्यस्थकों के स्तरों को न्यूनतम करके सूचना के संग्रहण में जोखिम के प्रबंधन तथा जोखिम की निगरानी में सूचना प्रौद्योगिकी का महत्तर उपयोग करके अंतरण लागत को न्यूनतम किया जा सके। अब निर्दिष्ट ऋण के पिछले प्रतिमान से अलग हटकर सीमित सोच को छोड़कर स्पष्टतः नवोन्मेष के महत्तर स्तर की जरूरत है।

अंतिम, ग्रामीण बुनियादी संरचना जैसे सड़कें, भण्डारण सुविधाएं, परिवहन, दूर-संचार तथा बिजली (पावर) के प्रावधान के बिना कृषि का विशाखीकरण और वृद्धि संभव नहीं है। इन सभी गतिविधियों का बहुत उच्चतर आर्थिक प्रतिलाभ होता है, परंतु जिन गतिविधियों की विशेषता सार्वजनिक कल्याण होता है उनका आर्थिक प्रतिलाभ बहुत कम होता है। अतः उनका वित्तपोषण करना कठिन होता है। जहां संभव हो उपयोगकर्ता प्रभारों का उपयोग करना होगा, परंतु अन्य वित्तीयन के साधनों का भी पता लगाना होगा। पंजाब, हरियाणा, तमिलनाडु और गोवा जैसे राज्यों ने पहले ग्रामीण सड़कें बना ली थीं और उनका वित्तपोषण स्थानीय उपकर जैसे मंडी उपकर लगाकर किया गया। अतः नए वित्तीयन प्रक्रिया तंत्र के लिए खोज

किए जाने की स्पष्ट जरूरत है। अतः ग्रामीण बुनियादी संरचना में निवेश तथा उनका वित्तपोषण एक प्रमुख चुनौती है। सरकार ने भारत निर्माण तथा पीयूआरए की पहल करके इसको स्पष्ट रूप से मान्य किया है।

कृषि की स्पष्ट महत्ता तथा गत 15 वर्षों में इसकी तुलनात्मक उपेक्षा को देखते हुए कृषि में वृद्धि को तेज करने की आवश्यकता तथा इसे कैसे प्राप्त किया जा सकता है इस पर विस्तार से चर्चा करते समय मैं थोड़ा-सा विषय से भटक गया था। परंतु वह मुख्य मुद्दा जिस पर मैं यहां जोर देना चाहूंगा वह है कि सरकार और इसकी एजेंसियों के विभिन्न स्तरों पर की जानेवाली पहलों को संगठित और समन्वित किए बिना ऐसे कार्यक्रम लागू नहीं किए जा सक ते। इसी संदर्भ में मैंने सार्वजनिक क्षेत्र को इसके सभी पहलुओं की दृष्टि से, परंतु खासकर उसकी सक्षमता को बढ़ाने के संदर्भ में शक्ति संपन्न बनाने की बात की थी।

शहरीकरण और शहरी विकास

अब मैं शहरीकरण और शहरी विकास से जुड़े मुद्दों पर आता हूं। यह विडम्बना हो सकती है, परंतु जैसा कि कृषि की वृद्धि हाल के वर्षों में अवरूद्ध हो गई है, वहीं आश्चर्यजनक तथ्य यह है कि भारत में शहरी जनसंख्या में वृद्धि भी 1980 और 1990 के बाद के दशकों में मंद हुई है (सारणी 9)। सामान्य प्रत्याशा और ऐतिहासिक अनुभव यह है कि शहरी वृद्धि सामान्यतः आर्थिक वृद्धि के साथ तेज होती है। अतः भारतीय शहरीकरण का मंद होना अप्रत्याशित है और शायद विसंगतिपरक और चिंताजनक भी है। साथ ही, भारत की शहरी जनसंख्या का परिमाण भी बहुत बड़ा है, लगभग 300 मिलियन (30 करोड़) लोग जो अमरीका की कुल जनसंख्या के परिमाण के बराबर है, निम्न वृद्धि के साथ भी यह 2030 तक या उसके आसपास यह संभवतः दुगुनी हो जायेगी। 1980 के बाद के दशक में की गई अधिकांश परियोजनाओं के अनुसार शहरी जनसंख्या 2001 में अनुमानित 285 मिलियन से लगभग 30 से 35 मिलियन अधिक होने की संभावना है। लोकप्रिय मान्यता के विपरीत निवल ग्रामीण शहरी उत्प्रवासन में उल्लेखनीय मंदी आयी है। लोग अब शहरों की ओर नहीं भाग रहे हैं इसलिए 'शहरी विस्फोटन' नहीं हो रहा है। 1981 से 1991 तक पूरे दशक के दौरान कुल निवल ग्रामीण-शहरी उत्प्रवास केवल 12.7 मिलियन लोगों का था और 1991-2001 के दशक के दौरान 14.4 मिलियन लोग ग्रामों से शहरों की ओर आये। दोनों दशकों में ग्रामीण शहरी उत्प्रवासन कुल शहरी जनसंख्या में वृद्धि का केवल 21 प्रतिशत था।

यह चिंताजनक क्यों है तथा अजीव घटना भारत में कैसे हुई?

कृषि उत्पादन और उत्पादकता में निम्न वृद्धि को देखते हुए यदि ग्रामीण /शहरी रूपान्तरण बड़े रूप में हुआ होता तो ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी क्षेत्रों की ओर आगमन से ग्रामीण क्षेत्रों में आर्थिक दबाव कुछ कम हो गया होता। विडम्बना यह है कि यह स्वयं ग्रामीण उत्पादकता में अपर्याप्त वृद्धि से संबंधित है। यदि ग्रामीण उत्पादकता में महत्तर वृद्धि हुई होती और उससे उच्चतर औद्योगिकीकरण और शहरीकरण हुआ होता। उच्च

सारणी 9 : भारत में शहरी जनसंख्या 1901-2001

जनगणना वर्ष	शहरी समूहन/कस्बों की संख्या	कुल जनसंख्या (मिलियन में)	शहरी जनसंख्या (मिलियन में)	शहरी जनसंख्या की औसत वार्षिक वृद्धि	शहरी जनसंख्या में औसत वार्षिक वृद्धि	कुल जनसंख्या के प्रतिशत के रूप में शहरी जनसंख्या
1901	1,830	238	213	26	..	10.8
1911	1,815	252	226	26	0.00	10.3
1921	1,944	251	223	28	0.77	11.2
1931	2,066	279	246	34	2.14	12.0
1941	2,253	319	275	44	2.94	13.9
1951	2,822	361	299	62	4.09	17.3
1961	2,334	439	360	79	2.74	18.0
1971	2,567	548	439	109	3.80	19.9
1981	3,347	683	524	160	4.68	23.3
1991	3,769	846	629	218	3.63	25.7
2001	4,378	1,027	742	285	3.07	27.8

टिप्पणी : 1. शहरी समूहन को जिसमें शहरों और उनके बाहर की वृद्धि की संख्या शामिल है, एक यूनिट माना गया है।
2. वर्ष 2001 के लिए कुल जनसंख्या तथा शहरी जनसंख्या में गुजरात और हिमाचल प्रदेश के उन क्षेत्रों की जनसंख्या भी शामिल है जहां प्राकृतिक आपदाओं के कारण जनगणना नहीं की जा सकी थी।
3. वर्ष 1991 के लिए भारत की कुल जनसंख्या और शहरी जनसंख्या में जम्मू एवं कश्मीर की जनसंख्या भी शामिल है जिसकी जनगणना नहीं की जा सकी थी।
4. वर्ष 1981 के लिए भारत की कुल जनसंख्या और शहरी जनसंख्या में आसाम की वह जनसंख्या भी शामिल है जिसकी जनगणना नहीं की जा सकी थीं।

स्रोत : भारत की जनगणना, 2001

उत्पादकता के साथ कम लोगों ने अधिक खाद्यान्न का उत्पादन किया होता और इसलिए अधिक लोग कृषि कार्य से मुक्त हुए होते। दूसरा मुद्दा है विनिर्माण में रोजगार के सृजन में असामान्य रूप से निम्न वृद्धि : 1980 और 1990 के बाद के दशकों में उद्योग में उत्पाद वृद्धि रोजगार में वृद्धि की तुलना में काफी ज्यादा रही है। यह अनुभव भी पूर्वी और दक्षिण-पूर्वी एशियान देशों के अनुभव से काफी भिन्न है। इस प्रकार न तो शहरी क्षेत्रों में श्रमिकों के लिए मांग का दबाव है और न ही ग्रामीण क्षेत्रों से श्रमिकों की अधिशेष आपूर्ति है। दोनों ही स्थितियां सार्वजनिक नीति तथा सार्वजनिक प्रशासन और सार्वजनिक प्रबंधन दोनों का ही असफलता से जुडी हैं क्योंकि हमने कृषि की बदलती रूपरेखा के अनुसार प्रतिक्रिया नहीं की है, अतः शहरी क्षेत्रों में श्रमिकों की कम खपत अनुपयुक्त औद्योगिक तथा शहरी नीतियों से जुड़ी हैं।

औद्योगिक नीतियों का दुराग्रह जैसे श्रमिकों का उपयोग करने वाले विनिर्माण क्षेत्रों में प्रतिबंध लगाते हुए उन्हें लघु उद्योगों के लिए आरक्षित किया जा रहा है, तथा श्रमिक कानूनों में रूढिवादिता ने श्रमिकों का उपयोग करने वाले उद्योगों के विरूद्ध दुराग्रह में योगदान किया है। ये नीतियां अनुपयुक्त औद्योगिक स्थलों संबंधी नीतियों के कारण और भी जटिल हो गयीं जिसने 1970 के दशक से उद्योगों को शहरों और शहरी क्षेत्रों में लगाने पर पाबंदी लगायी हुई है। ऐसे प्रतिबंधों ने समूहन की मितव्ययिता को हानि पहुंचायी है, जिससे औद्योगिकीकरण की लागत बढ़ी है और इसलिए उसके विस्तार में बाधा आयी। इसके अलावा विनिर्माण उद्यमशीलता के लिए ऊष्मायंत्र (इन्क्यूवेटर) के रूप में शहरों की भूमिका को भी पनपने का अवसर नहीं दिया गया, और अंतिम, ये श्रमिकों का उपयोग करने वाले उद्योगों को शहरों और शहरी क्षेत्रों में लगाए जाने की जरूरत है। दूरवर्ती स्थानों पर उन्हें लगाने की जरूरत, जहां श्रमिक आसानी से उपलब्ध नहीं है, ने भी श्रमिकों का उपयोग करने वाले उद्योगों और इसलिए शहरीकरण में बाधा पहुंचाई।

1980 और 1990 के बाद के दशकों में शहरी वृद्धि के मंद पड़ जाने के दूसरे कारण शहरी भूमि संबंधी नीति में रूढ़िवादिता की मात्रा से जुड़े हैं। 1940 के बाद के दशक से किराया नियंत्रण कानूनों की विद्यमानतः 1970 के बाद के दशक से शहरी भूमि हदबंदी कानून, अनुपयुक्त जोन बनाने तथा निर्माण संबंधी उप नियमों ने शहरी क्षेत्रों में जमीन के उपयोग के रूपान्तरण में जटिलताएं पैदा करने में योगदान किया है जिससे शहरी वृद्धि मंद पड़ गई। इन जटिलताओं में शहरी जमीन के विकास पर सरकारी अतिशय नियंत्रण भी अंतर्निहित है, जिसने संसाधनों और विशेषज्ञता की कमी से और भी ज्यादा कमजोर किया है, इस प्रकार भारतीय शहरों में भूमि के समूहन और भूमि के विकास को आम तौर पर बाधा पहुंची है और इससे शहरी जमीन की कीमतों में अतिशय वृद्धि हुई है जिससे जनसंख्या के बहुत बड़े भाग के लिए मकान बनाना अवहनीय हो गया है।

नीति संबंधी इन दुराग्रहों को अपर्याप्त शहरी बुनियादी निवेश और शहरी संचालन में गंभीर समस्याओं ने और भी जटिल बना दिया है : शहरी स्थानीय निकाय प्रभावी नहीं रह गए हैं; वे विशेषज्ञता और वित्तीय संसाधनों दोनों की कमी से परेशान हैं स्थानीय कर विशेषकर काफी नहीं हैं और उनको खराब ढ़ग से लागू किया जाता है। उपभोक्ता प्रभार कम और न्यून प्रभावी हैं।

इसका परिणाम यह है कि अधिकांश शहरी परिवेश स्वास्थ्यकारी नहीं हैं, विशेषकर कम संपन्न लोगों के लिए। यह इस तथ्य से झलकता है कि लगभग आधे शहरी परिवारों के घरों में पीने का पानी भी नहीं पहुंचा है और लगभग एक चौथाई परिवारों में कोई लेट्रिन नहीं है न निजी और न ही सरकारी। यह संदेश गावों तक भी पहुंचा है अतः इसमें कोई आश्चर्य नहीं यदि शहरी वृद्धि मंद पड़ गई है।

तो क्या किया जाना चाहिए? यह दूसरा मामला है जहां सार्वजनिक क्षेत्र को शक्तिसम्पन्न बनाना है ताकि वह जानकारी से प्रेरित निर्णय ले सके। जो कि शहरी और जनता के अनुकूल हो। साथ ही ऐसा क्षमता का निर्माण करें जो शहरों को प्रभावी ढांचे में प्रबंधित कर सके। समग्र औद्योगिक नीति और औद्योगिक स्थानन नीति दोनों को अपनी श्रमिक विरोधी दुराग्रह को छोड़ना होगा तथा औद्योगिक स्थानन नीति को शहरी औद्योगिक पार्कों के सचेत विकास के लिए अवसर प्रदान करना होगा। उदाहरण के लिए अनेक एशियाई शहरों में जिनमें सिंगापुर जैसे उच्च आय वाले नगर राज्य भी शामिल हैं, चपटी बहुमंजिली फेक्टरियों का प्राचुर्य हो जिनमें अनेक पर्यावरण को दूषित न करने वाली और श्रमिकों का उपयोग करने वाली विनिर्माण की सुविधाएं हैं। उद्योगों के समूहों में होने के लाभ तथा संबंधित सुविधाओं को उपलब्ध कराने वाली स्थितियों जैसे, औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान, शिक्षा और स्वास्थ्य की सुविधाएं उपलब्ध होने के लाभों को मानना या स्वीकार करना होगा। ऐसी अनेक सुविधाएं निजी क्षेत्र द्वारा भी उपलब्ध करायी जा सकती हैं।

अब हमारे यहां 35 मिलियन से ज्यादा शहर हैं और उनमें से लगभग 400 शहरों की जनसंख्या 1,00,000 से ज्यादा है। इस प्रकार इन शहरों के प्रबंधन की समस्या बड़ी गहरी है जिसमें वित्तीय प्रबंधन करना, सार्वजनिक सेवाएं देना तथा समग्र रूप में शहर की व्यवसथा करना शामिल है। कुछ सबसे बड़े शहरों के बजट कुछ राज्यों के बजटों से भी बड़े हैं तो भी शहर के प्रबंधकों के प्रशिक्षण के लिए कोई कार्यक्रम नहीं हैं, विशेषज्ञता तो बिल्कुल भी नहीं है, तथा नगर निगमों के कर्मचारियों का सम्मान तो बहुत कम हो। एक बार पुनः मैं यह कहना चाहूंगा कि भारत में शहरों का सार्वजनिक प्रबंधन इनके सभी स्वरूपों में भारी रूप से असफल है।

अतः शहरों के प्रबंधन को सुदृढ़ करना भारतीय शहरों के स्वस्थ विकास के लिए मुख्य अपेक्षा है। इसके लिए स्थानीय निकायों के वित्तीय सुदृढ़ीकरण के व्यापक कार्यक्रम की जरूरत है जिसमें उनकी स्थानीय कर प्रणाली का पुनर्विन्यास भी शामिल है ताकि वे सशक्त बन सकें। शहरी स्थानीय निकायों के लिए ऋणों के संवर्धन हेतु अर्थोपाय ढूंढ़ने होंगे ताकि वे ऋण के पात्र बन सकें और फिर शहरी बुनियादी संरचना में निवेश के लिए आवश्यक संसाधन जुटा सकें। समग्र रूप में शहरों में भारी सार्वजनिक प्रबंध प्रणालियां हैं जो कि भारी उपेक्षित हुई हैं।

भारतीय अर्थव्यवस्था के खुलने के साथ ही, सभी प्रकार के भारतीय उद्योगों और उद्यमियों को शेष विश्व के सर्वोत्तम के साथ प्रतिस्पर्धी बनना होगा। वे पंगु हो जायेंगे यदि वे शहरें जिनमें वे स्वयं रहते हैं, स्वयं इतने सक्षम नहीं हैं जितने कि उनके अन्यत्र विद्यमान प्रतिपक्षी । अतः भारतीय उद्यम की वृद्धि में तेजी बाधित होगी यदि भारतीय शहरों के प्रबंधन की दृष्टि से सार्वजनिक क्षेत्र को पर्याप्त शक्ति संपन्न नहीं बनाया गया। यह ऐसा कार्य है जिसे निजी क्षेत्र स्पष्टतः नहीं कर सकता।

मानव संसाधन विकास

अब मैं मानव संसाधन विकास पर बोलना चाहूंगा । यह विडम्बना है कि हमे अपनी सूचना प्रौद्योगिकी में अपनी उपलब्धियों पर महान अंतरराष्ट्रीय मान्यता प्राप्त हुई है, जिसे कि आज ज्ञान का अर्थशास्त्र (नोलिंज इकानामि) कहा जाता है। हम अकसर यह मानते हैं कि हमारी तुलनात्मक बढ़त ज्ञान गहन क्षेत्रों में है। वास्तव में, स्वास्थ्य और शिक्षा के बुनियादी संकेतकों को देखते हुए इस धारणा को बनाये रखना कठिन है कि हमारा देश ज्ञान गहन देश है। इस तथ्य के होते हुए भी कि विभिन्न क्षेत्रों में हमारे पास उत्तमता की पराकाष्ठा भी है (सारणी 10)।

भारत में बुनियादी साक्षरता का स्तर निरंतर सुधर रहा है और यह सर्वाधिक उल्लेखनीय 1990 के बाद के दशक में रहा, जो 1991 के 52 प्रतिशत से बढ़कर 2001 में 65 प्रतिशत हो गया। परंतु ये स्तर अधिकांश प्रतियोगी देशों के स्तरों की तुलना में काफी कम हैं। यदि कृषि में उत्पादकता को सुधारना है तो ग्रामीण श्रमिक शक्ति - महिला और पुरूष दोनों के बुनियादी शिक्षा के स्तर को काफी सुधारना होगा। इसी प्रकार यदि श्रमिकों का उपयोग करने वाले भारतीय उद्योग को विश्व में प्रतिस्पर्धी बनना है, तो इसकी श्रमिक शक्ति को बेहतर रूप से शिक्षित तथा तकनीकी रूप से प्रशिक्षित करना होगा। भविष्य में अनिवार्यतः दक्ष श्रमिक शक्ति की जरूरत होगी।

प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा

भारत में शिक्षा की कमी को उत्तरोत्तर रूप से समझा जा रहा है यह इस बात से ज्ञात होता है कि सरकार द्वारा शुरू किए गए नए कार्यक्रमों में प्राथमिक शिक्षा सर्व शिक्षा अभियान (सभी के लिए शिक्षा कार्यक्रम) पर जोर दिया गया है। अन्य अनेक गैर-सरकारी संगठन तथा अन्य समाज सेवी संगठन अब भारत में प्राथमिक शिक्षा को तेजी से फैलाने मे ंध्यान केंद्रित कर रहे हैं। तथापि, यह अब भलीभांति ज्ञात है कि भारत के कई हिस्सों में सार्वजनिक शिक्षा प्रणाली में काफी गिरावट आ गई है। सरकारी प्राथमिक विद्यालयों के कार्य-निष्पादन पर व्यापक रूप मे ंप्रश्न चिह्न लगने लगे हैं। अब गरीब लोग भी सरकारी स्कूलों से निकालकर बच्चों को निजी स्कूलों में भेज रहे हैं, और अकसर उनकी गुणवत्ता भी बेहतर नहीं है।

सारणी 10 : मानव विकास के सूचकांकों के चुनिंदा मापदंड

देश	प्रति व्यक्ति सदेउ पीपीपी (अम.डा)2003	जन्म के समय जीवन प्रत्याशा (वर्ष) 2003	प्रौढ़ शिक्षा दर (प्रतिशत में) (आयु 15 वर्ष और उससे अधिक) 2003	शिशु मृत्यु दर (प्रति 1000 जन्म) 2003	कुल जन्म दर प्रति (1000 व्यक्तियों पर) 2003	शुद्धजल तक पहुंच (जनसंख्या का प्रतिशत) 2002	सुधरी हुई साफ सफाई (जनसंख्या का प्रतिशत) 2002
1. अमरीका	37,562	77.4	..	7	14.1	100	100
2. ब्रिटेन	27,147	78.4	..	5	11.6	..	..
3. हांगकांग, चीन(एसएआर)	27,179	81.6	93.5	..	6.9	..	..
4. सिंगापुर	24,481	78.7	92.5	3	10.3	..	..
5. कोरिया गणराज्य	17,971	77.0	97.9	5	10.2	..	92
6. मलेशिया	9,512	73.2	88.7	7	22.4	..	95
7. चीन	5,003	71.6	90.9	30	12.4	44	77
8. भारत	**2,892**	**63.3**	**61.0**	**63**	**24.8**	**30**	**86**
9. बांगला देश	1,770	62.8	41.1	46	27.1	48	75
10. पाकिस्तान	2,097	63.0	48.7	81	26.5	54	90
11. श्रीलंका	3,778	74.0	90.4	13	18.8	91	78

स्रोत : 1. मानव विकास रिपोर्ट 2005
2. विश्व विकास संकेतक, विश्व बैंक

उत्साहजनक बात यह है कि गरीब मां-बाप प्राथमिक शिक्षा पर काफी धन खर्च कर रहे हैं जोकि वस्तुतः सरकार द्वारा प्रदान की जानी चाहिए। इसकी स्पष्ट मांग है और ऊपर उठने के लिए इसकी उपयोगिता भी मानी गई है। सरकारी कार्यक्रमों का विस्तार निश्चय ही उपलब्ध करायी जा रही शिक्षा की गुणवत्ता को बढ़ाएगी।

तथापि इतना ही ध्यान शिक्षा की गुणवत्ता पर भी दिया जाना जरूरी है जो तभी आ सकती है, यदि स्कूली प्रणाली की स्थानीय जबाबदारी और सामान्य तौर पर महत्तर रूप से स्थानीय भागीदारी हो। शिक्षकों को स्वयं को प्रेरित तथा बेहतर रूप से प्रशिक्षित होना है तथा शिक्षण सामग्री उपलब्ध करायी जानी है और उसके स्तर को भी सुधारना है। स्पष्टतः ये समस्याएं देश के निर्धनतम स्थलों पर भी बतायी जाती हैं। ये क्षेत्र भी बुनियादी संरचना जैसे पावर, ग्रामीण सड़कें और संचार की दृष्टि से पिछड़े हुए हैं। नवोन्मेषन और प्रयोगीकरण बड़े पैमाने पर किए जा रहे हैं, परंतु अभी भी काफी कुछ किया जाना बाकी है। जबकि इसमें कोई संदेह नहीं रहना चाहिए कि प्राथमिक शिक्षा सभी के लिए सुलभ हो इसके लिए प्राथमिक शिक्षा की मुख्य जबाबदेही राज्यों की है। इसे पूरी करने के अनेक तरीके हो सकते हैं जिनमें अलग-अलग तरह के गैर-सरकारी विद्यालयों की भागीदारी भी हो सकती हैं।

चूंकि प्राथमिक शिक्षा के विस्तार में तथा प्राथमिक शिक्षा के बाद पढ़ाई छोड़ने वाले बच्चों की संख्या को कम करने में कुछ सफलता प्राप्त हुई है, अतः अगला जोर माध्यमिक शिक्षा की बढ़ती हुई मांग पर होना चाहिए। जैसे-जैसे हम प्रगति करते हैं, आय बढ़ती है और उत्पादन प्रक्रियाओं को ज्यादा से ज्यादा दक्षताओं की जरूरत लेने लगती है ताकि वे प्रतिस्पर्धी बन सकें। प्राथमिक शिक्षा अब निम्नतर दक्षतावाले कार्यों को पूरा करने के लिए पर्याप्त नहीं होगी। जहां प्राथमिक शिक्षा के बारे में पर्याप्त सोच विचार हो रहा है, हमने उसके फलस्वरूप होने वाले माध्यमिक विद्यालयों के विस्तार के लिए जरूरी संसाधनों और रणनीति के बारे में सोचना भी शुरू नहीं किया है। हमें माध्यमिक शिक्षकों की आपूर्ति को भी काफी सीमा तक बढ़ाना होगा, विद्यालय भवन में तथा शिक्षा सामग्री को तैयार करने और उसके वितरण में भारी निवेश के लिए संसाधनों की जरूरत होगी। प्रत्येक गांव में माध्यमिक विद्यालय भी हम नहीं देख पाते, दूर-दूर फैली ग्रामीण बस्तियों में बच्चों को इन विद्यालयों तक पहुंच कैसे हो यह भी मुद्दा उठेगा। एक बार पुनः सोच में भारी नवोन्मेष लाना होगा कि यह सब कैसे किया जाए और कैसे भारी संसाधनों को जुटाने और दक्षतापूर्वक और उत्तरदायित्वपूर्ण रूप से कैसे निवेश किया जाए।

व्यावसायिक प्रशिक्षण

ये विद्यालय क्या पढ़ायेंगे? प्रत्येक शैक्षिक प्रणाली को बुनियादी माध्यमिक शिक्षा और व्यावसायिक प्रशिक्षण की आवश्यकता तथा विभिन्न विषयों (वर्गों) के लिए बच्चों का उपयुक्त रूप से मार्गदर्शन करने में निहित कठिनाइयों के बीच तनाव से निपटना होगा। यहां भी भारत में मामूली-सी संगठित सोच हुई है। तकनीकी प्रशिक्षण औद्योगिक संस्थानों (आईटीआई) द्वारा अनिवार्यतः प्रदान की गई है, परंतु ये काफी नहीं हैं और अकसर विद्यार्थियों को संगत दक्षताएं प्रदान नहीं करते हैं। यह रोचक है कि भारत में 175 पारिभाषित व्यवसाय हैं जिनके लिए संगठित प्रशिक्षण दिया जाना होता है; जर्मनी में, ऐसे 2500 व्यवसाय हैं, और पेशे हैं; प्रत्येक का अपना संगठित प्रशिक्षण पाठ्यक्रम है, प्रशिक्षण प्रमाणन है, तथा प्रशिक्षण संस्थाओं में उपलब्ध हैं। प्रसिद्ध जर्मन व्यावसायिक प्रशिक्षण प्रणाली में संघीय सरकार, राज्य सरकारों, स्थानीय वाणिज्य संघों और फर्मों के बीच एक बहुत ही जटिल परस्पर प्रतिक्रियाओं का ढांचा है जो इनका निधियन करते हैं तथा प्रशिक्षणार्थियों को प्रशिक्षण प्रदान करते हैं। जहां यह सुझाना उपयुक्त नहीं होगा कि भारत इस जर्मन मॉडल को अपनाये; जो स्वयं बदलाव और आधुनिकीकरण के दौर से गुजर रहा है। मैंने इसका उल्लेख केवल यह सुझाने के लिए किया कि कोई ऐसा संगठित दृष्टिकोण अपनाना संभव है, जो व्यावसायिक प्रशिक्षण को सम्मानीय, मांगोन्मुखी तथा स्थानीय भागीदारी तथा जबाबदेही के साथ विकसित हो। एक शुरूआत कर दी गई है जिसके अंतर्गत 500 आईटीआई का उन्नयन उद्योगों की सहभागिता के साथ किया जा रहा है। परंतु यह सुनिश्चित करने के लिए कि सभी व्यवसायों में दक्षताओं का नियमित रूप से उन्नयन हो, काफी कुछ किया जाना अभी भी बाकी है।

इसके लिए स्थानीय स्तर पर व्यापक औद्योगिक सहभागिता को शामिल करने के प्रयास करने होंगे ताकि दिया गया प्रशिक्षण संभावित नियोक्ताओं को प्रासंगिक लगे। कृषि विस्तार प्रणालियों के लिए नई अपेक्षाओं के साथ व्यावसायिक प्रशिक्षण के लिए प्रणालियों को दिए जाने वाले प्रशिक्षण के प्रकार तथा यह प्रशिक्षण कैसे आयोजित किया जाएं, ये दोनों ही, भारत के काफी व्यापक रूप से विषम या असामान्य क्षेत्रों में विभिन्न आवश्यकताओं के अनुसार काफी भिन्न-भिन्न होने चाहिए। हमें यह भी मानने की जरूरत है कि सेवा व्यवसायों को भी प्रशिक्षण भी संगठित किया जाना चाहिए। इसका एक उदाहरण यह दिया जा सकता है कि होटल उद्योग में लम्बे समय से प्रशिक्षण को मान्यता देने की जरूरत है और किस प्रकार स्वयं निजी क्षेत्र ने भारी संख्या में उत्कृष्ट प्रशिक्षण संस्थान स्थापित किए हैं । इसी प्रकार का मामला सूचना प्रौद्योगिकी क्षेत्र का रहा है, जहां मांग के बढ़ने की शुरूआत के साथ ही अनेक निजी क्षेत्र के प्रशिक्षण संस्थान उभर कर आये हैं। अतः स्पष्टतः यह एक ऐसा क्षेत्र है जो सार्वजनिक और निजी क्षेत्र की सहभागिता के लिए सर्वाधिक उपयुक्त है। तथापि, एक बार पुनः सार्वजनिक निजी क्षेत्र की सहभागिता भी सार्वजनिक क्षेत्र में संगठनात्मक क्षमता को काफी समय तक शामिल करती है जो सुपुर्दगी प्रणाली को इस प्रकार बतायी है कि वे दक्षता, उत्पादकता और नवोन्मेष को प्रेरित करें।

उच्च शिक्षा

अब मैं उच्च शिक्षा से संबंधित मुद्दों पर आता हूं। आजादी के बाद से, और हाल के वर्षों में विशेषकर देश के पश्चिमी और दक्षिण क्षेत्र में निजी क्षेत्र में तकनीकी संस्थानों के भारी संख्या में खुलने से गुणवत्ता में भारी वृद्धि हुई है। तथापि कुछ प्रसिद्ध संस्थानों जैसे इंडियन इंस्टिट्यूट ऑफ साइंस, इंडियन इंस्ट्यिूट ऑफ टैकनोलॉजी (आईआईटीज), दि नेशनल इंस्टिट्यूट ऑफ डिजाइन, और अभी हाल ही के नेशनल लॉ स्कूल्स ने भारत में उच्चतर शिक्षा में गुणवत्ता की सामान्य तौर पर पायी जाने वाली कमी को ढक दिया है। इन प्रसिद्ध संस्थानों में से भी केवल तीन को ही चीनी अनुसंधान कर्ताओं के एक समूह द्वारा उद्देश्यपरक मानदंड के आधार पर बनायी गई 500 उच्च शिक्षा संस्थानों की सूची में शामिल किया गया है। भारतीय माध्यमिक विद्यालय स्तर पर शिक्षा की अपेक्षाकृत व्यापक स्तर पर उच्च गुणवत्ता होने के कारण प्रतिस्पर्धी प्रक्रियाओं ने बहुत कुशाग्र बुद्धि वाले भारतीय विद्यार्थी बहुत बड़ी संख्या में उभरे हैं जो उच्च शिक्षा संस्थानों में खराब गुणवत्ता वाली शिक्षा और परिवेश के बावजूद उत्कृष्ट निकल सकते हैं।

इस बीच पूर्वी और दक्षिण पूर्व एशिया में चीन, दक्षिण कोरिया, सिंगापुर, हांगकांग तथा थाईलैंड में गुणवत्ता और मात्रा दोनों ही दृष्टियों से महाविद्यालयों और विश्व विद्यालयों का विस्फोटन हुआ है। हमें शीघ्र ही इसे स्वीकार कर लेना चाहिए कि गुणवत्ता के उल्लेखनीय विस्तार के साथ-साथ सुविधाओं, लेबोरेट्रीज, पुस्तकालयों और सबसे बढ़कर संकाय की महती आवश्यकता है। यह स्पष्ट होना चाहिए कि वर्तमान प्रणाली पर्याप्त नहीं है। हालांकि हाल के वर्षों में निजी तकनीकी संस्थाओं की बहुत बड़ी संख्या उभरी है, फिर भी अधिकांश उच्च शिक्षा प्रणाली सरकार द्वारा नियंत्रित और संचालित की जाती है। यह मूलतः ब्रिटिश सार्वजनिक विश्वविद्यालय प्रणाली पर बनायी गई थी, परंतु अब वर्षों के बाद यह ऐसी निर्जीव हो गई है कि इसमें सृजनात्मकता और गुणवत्ता की बड़ी मांग है।

संसाधनों की भारी कमी है : ट्यूशन फीस अत्यधिक निम्न है तथा संसाधनों के लिए सरकार पर निर्भर रहना पड़ता है। इसके अलावा, व्यावसायिक शिक्षा की तो बात ही क्या प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा के लिए भी दुर्लभ संसाधनों के लिए वैध प्रतिस्पर्धी दावे होते हैं।

यहां भी हमें संचालन की नईप्रणालियों की खोज करनी होगी जो सुपुर्दगी में विविधता की अनुमति दे सके। निजी कंपनी क्षेत्र में प्रतिपूर्ति के स्तरों में भारी वृद्धि करते हुए उत्कृष्टता की प्राप्ति के लिए उपयुक्त प्रोत्साहन देते हुए भी, तथा महाविद्यालयों और विश्व विद्यालयों में बुनियादी सुविधाओं की भी कमी होने के कारण कुशाग्र बुद्धि वाले विद्यार्थियों को शिक्षकों के कार्य कराने के लिए आकर्षित करना भी अब पहले से अधिक कठिन हो गया है।

मेरे मन में अनावश्यक रूप से प्राइवेट बनाम सार्वजनिक शिक्षा पर कुछ चर्चा चल रही है। विश्व में कोई भी अच्छा शिक्षा संस्थान लाभोन्मुखी नहीं है। अमरीका में भी, जहां 'प्राईवेट' कालिजों और विश्व विद्यालयों की सबसे ज्यादा भरमार है, सरकार द्वारा संचालित संस्थाओं में छात्रों का प्रतिशत ज्यादा बनता है। वे संस्थान भी जिन्हें 'निजी' का लेबल (ठप्पा) लगा होता है, वे भी अनिवार्यतः स्वायत्त गैर-लाभ अर्जक संस्थान हैं। वे इस अर्थ में निजी हैं कि उनका प्रबंध तंत्र सरकारी नियंत्रणों से मुक्त स्वायत्त है, परंतु अधिकांशतः अनेक रूपों में पर्याप्त सरकारी अनुदान प्राप्त करते है। इन संस्थानों के बारे में रोचक बात यह है कि इनकी संचालन प्रणाली गुणवत्ता, उत्कृष्टता और प्रतिस्पर्धात्मक सुनिश्चित करने का प्रयास करती हैं।

एक बार पुनः मैं यह दोहराना चाहूंगा कि मैं किसी विदेशी प्रणाली को भारत में लगाने की बात नहीं कर रहा हूं क्योंकि प्रत्येक प्रणाली अपनी विशिष्ट पिछली पृष्ठभूमि से गहरे जुड़ी है। मैं जिस बात के लिए तर्क दे रहा हूं वह यह है कि देश में उच्च शिक्षा के लिए तथा नए संसाधनों की खोज के लिए तथा नए प्रकार के संचालन के लिए ऐसे नए जोश को निर्मित करने की जरूरत है जो गुणवत्ता को सुनिश्चित करे और जिसका उद्देश्य उत्तमता प्राप्त करना हो।

समग्रतः ऐसा कोई रास्ता नहीं है कि हम उस प्रकार की वृद्धि प्राप्त कर सकें जैसी कि हमने परिकल्पना की थी - 8 प्रतिशत+ की वार्षिक वृद्धि। जब तक कि सारी शिक्षाप्रणाली, प्राथमिक, माध्यमिक, व्यावसायिक तथा उच्च शिक्षा का पुनर्विन्यास न कर दिया जाए। सरकार को यह सुनिश्चित करने के लिए ऐसा हो, उत्तरदायित्व उठाना चाहिए, परंतु इसे इस रूप में संगठित करना चाहिए कि सर्वोत्तम उद्यमशीलता की ऊर्जा को भी, जोकि अब देश में उभर कर आ रही है, शिक्षा के उद्देश्य की ओर लगा दिया जाए।

स्वास्थ्य

मानव संसाधनों पर अपनी बात समाप्त करने से पहले मुझे स्वास्थ्य के मुद्दे का उल्लेख करना है। यह अपने आप में एक ऐसा व्यापक और जटिल विषय है जिसे छूने में मैं आपको भी सक्षम नहीं पाता हूं। तथापि मुख्य मुद्दे जिन पर मुझे बात करनी है, वह है कि विभिन्न स्तरों पर आर्थिक दक्षता तभी प्राप्त की जा सकती है, यदि लोग स्वस्थ्य हों। जहां काफी मात्रा में सफलता संक्रामक रोगों को समाप्त करने मे प्राप्त कर ली गई है, फिर भी भारत में रुग्णता दर उच्च बनी हुई है। सार्वजनिक स्वास्थ्य की सुपुर्दगी के संबंध में विशेषकर स्वच्छ पानी और साफ सफाई की उपलब्धता के बारे में मुख्य मुद्दे हैं, परंतु आरोग्य कर स्वास्थ्य की सुपुर्दगी संबंधी मुद्दे भी उतने ही महत्वपूर्ण हैं। यहां भी सार्वजनिक चिकित्सा प्रणाली में गिरावट आने के अनेक व्यापक प्रमाण हैं, इन सार्वजनिक प्रणालियों का

स्थान अब निजी सेवा प्रदाता ले रहे हैं। नई तकनीकों, नई औषधियों तथा निदानात्मक सुविधाओं के होते हुए भी, कम संपन्न लोग इन सेवाओं तक वहनीय लागत पर प्राप्त करने में असमर्थ हैं तथा स्वास्थ्य बीमा भी अपनी शैशव अवस्था में है।

यदि हमारी नवयुवक और विस्तारक जनसंख्या स्वस्थ्य और लाभप्रद जीवन की ओर देखें तो यह एक दूसरा महत्वपूर्ण क्षेत्र है जो नवोन्मेषी, सार्वजनिक निजी सहभागिता वाली वहनीय प्रणालियों की मांग करता है जो विश्वसनीय और भरोसेमंद हों। एक बार पुनः सार्वजनिक क्षेत्र को पुनः ऐसी प्रणाली की आयोजना के लिए सक्षमता प्राप्त करनी है।

सार्वजनिक क्षेत्र का प्रबंधन

वह सामान्य विषय जो इन तीन क्षेत्रों में, जिन्हें कि मैंने उद्धारण के लिए चुना है और जो सुधारों के नए दौर के लिए जरूरी हैं, वह है - सक्षम और नवोन्मेषी सार्वजनिक प्रबंधन। मैंने भौतिक क्षेत्र की बुनियादी संरचना पर कोई बात नहीं की है, क्योंकि उन पर अन्यथा अन्यत्र अकसर काफी चर्चा की जा चुकी है। भौतिक बुनियादी संरचना में भारी बड़ी-बड़ी प्रणालियों का प्रबंधन शामिल है। इन सभी में भी कम से कम एक आम संभावना है - आंशिक रूप से निजी सहभागिता की सुपुर्दगी। जैसा कि चर्चा की गई है - शहरें, शिक्षा प्रणालियां, स्वास्थ्य प्रणालियां, अस्पताल ये सभी भी बड़ी सार्वजनिक सेवा प्रणालियां हैं जिनमें दक्षता और नवोन्मेषी प्रबंध-तंत्र की भारी आवश्यकता है। मुख्य मुद्दा है - सार्वजनिक सेवाओं की दक्ष सुपुर्दगी, और विशेषकर भारत में, वहनीय मूल्यों पर।

इन अधिकांश क्षेत्रों में बड़े-बड़े सार्वजनिक क्षेत्र की उपस्थिति अनिवार्य है। शहरी जल आपूर्ति प्रणाली, सीवरेज (जल-मल निकासी) प्रणालियां, सार्वजनिक प्रकाशीकरण तथा सार्वजनिक परिवहन विशेषकर किसी न किसी रूप में सरकारी प्राधिकरण द्वारा संगठित हैं, भले ही उनमें कुछ अंश तक निजी सहभागिता भी है तो भी। अनिवार्य सेवाएं होने के कारण, इनमें किसी न किसी रूप में सरकारी विनियमन अभी भी है। रेलवे में भी, जहां कुछ प्राइवेट सुपुर्दगी संभव है, अंतरराष्ट्रीय अनुभव यह सुझाता है कि बुनियादी संरचना का स्वामित्व सरकार के पास ही होना चाहिए, साथ ही उसका विनियमन और आबंटन भी। यही स्थिति पोर्टों और एयर पोर्टों की है; विशिष्टतः स्वामित्व सामान्यतः सरकार या सार्वजनिक प्राधिकरण के पास है, जबकि सुपुर्दगी को अकसर प्राथमिकता दी जा सकती है।

ये सभी सार्वजनिक प्रबंध प्रणालियां विशेषकर बहुत बड़ी और जटिल हैं। अतः उनमें उत्कृष्ट सार्वजनिक प्रबंधन की जरूरत है। इसकी कल्पना की जा सकती है कि सबसे बड़ी प्रबंधन संबंधी चुनौतियां इन बड़ी जटिल प्रणालियों के प्रबंधन में निहित हैं जो सैद्धांतिक रूप में प्रखरतम प्रबंधकों को आकर्षित करने की है। तथापि विडम्बना यह है, कि इस प्रकार की प्रबंधन कार्य प्रणालियों की विशेषज्ञता का निर्माण बहुत कम है और ऐसे बहुत कम प्रतिष्ठित प्रबंधक स्कूल हैं जो सचेत रूप से इस प्रकार की प्रणालियों के लिए प्रशिक्षण प्रदान करते हों। इन सब प्रणालियों के बड़े बजटों के लिए जटिल वित्तीय प्रबंधन की जरूरत है; इन सभी में संवेदनशील ग्राहक सुपुर्दगी भी शामिल है और इन सभी में जटिल बुनियादी सुविधाओं की जरूरत होगी। दूसरे शब्दों में, इन सभी प्रणालियों में वे सभी तत्व शामिल हैं जिनके लिए प्रखरतम व्यक्तियों को आकर्षित करना चाहिए जो इन चुनौतियों के निपटने में रुचि लेते हों। यह विडम्बनापूर्ण है कि छोटी-छोटी चुनौतियों के लिए जटिल प्रशिक्षण प्रदान करने वाले अनेक प्रबंध संस्थान हैं, परंतु ऐसा एक भी नहीं है जो इन जटिल कार्यों को करने का प्रशिक्षण दे।

हमें क्या करने की जरूरत है? हमें सार्वजनिक सेवा को पुनः प्रतिष्ठित या गौरवपूर्ण बनाना होगा। शक्ति और प्राधिकार सत्ता का उपयोग करने के लिए नहीं, वरन् दक्ष सार्वजनिक सेवा सुपुर्दगी के लिए चुनौतियों से निपटने हेतु। अधिकांश सार्वजनिक सेवा सुपुर्दगी संबंधी परिचालन, सिविल सेवा द्वारा संचालित परिचालनों सहित, विभिन्न स्तरों पर बाह्य विशेषज्ञता को लाने की जरूरत है। हमारे प्रत्येक सार्वजनिक प्राधिकरण में बाद के स्तर पर प्रविष्टि को निरुत्साहित किया जाता है और इसलिए ये अंतर्मुखी हो गए हैं और नए विचारों को संदेह की दृष्टि से देखते हैं। बाह्य विशेषज्ञों की बाद की स्थिति में प्रविष्टि नईऊर्जा तथा सार्वजनिक उद्यमशीलता को लाने में भारी योगदान करेगी।

विभिन्न क्षेत्रों में व्याप्त वह विषय जिस पर चर्चा की गई है, वह है - सार्वजनिक निजी सहभागिता के नए स्वरूप का पता लगाना तथा उसका विकास करना । यह समझा जाना चाहिए कि इन्हें विकसित करना आसान नहीं है। ये सामान्यतः दो विभिन्न संगठनात्मक सिद्धांतों के बीच तनाव पैदा करते हैं । एक है - लाभ का उद्देश्य न रखनेवाला और दूसरा है - लाभ की इच्छा रखने वाला। चुनौती यह है कि ऐसी उपयुक्त प्रोत्साहन प्रणाली विकसित की जाए ताकि अंतिम उद्देश्य उसके अनुरूप हो जाए। विभिन्न क्षेत्रों के लिए अलग-अलग प्रकार की सहभागिता की जरूरत होगी। उदाहरण के लिए शिक्षा में, सहभागी गैर-लाभ-अर्जक, गैर-सरकारी संगठन हो सकते हैं। पोर्टों और एयर पोर्टों में सहभागी स्पष्टतः लाभ - इच्छुक निजी कंपनियां हो सकती हैं।

समग्रतः सार्वजनिक सेवा सुपुर्दगी के नवोन्मेषी रूपों के लिए खोज की जानी होगी। इसमें प्रतिपूर्ति के स्तरों का पुनः समन्जन भी निहित है। यदि सबसे जटिल कार्यों को करने के लिए उच्च स्तर की दक्षता वाले व्यक्तियों को लिया जाता है तो उन्हें पर्याप्त रूप से प्रतिपूर्ति करनी होगी।

इस प्रकार हमें सरकार और सार्वजनिक प्राधिकरणों के सभी स्तरों पर सार्वजनिक प्रशासन और प्रबंधन को सुधारने के लिए राष्ट्रीय स्तर पर

निर्मित केंद्रित कार्यक्रमों की जरूरत होगी ताकि सार्वजनिक सेवा की सुपुर्दगी दक्ष बन जाए। यह निजी क्षेत्र द्वारा नहीं की जा सकती और यदि यह नहीं किया गया तो स्वयं निजी क्षेत्र को स्वास्थ्य, शिक्षा, ग्रामीण और शहरी तथा अन्य सभी भौतिक बुनियादी सुविधाओं से उभरने वाली कमियों से निपटना होगा।

निष्कर्षात्मक टिप्पणियां

गत 15 वर्षों के दौरान चलायी गई आर्थिक सुधार की प्रक्रिया ने प्रायः सभी क्षेत्रों में सभी जगह नईउद्यमशील ऊर्जाओं के विस्फोटन को उभारा है। इसके फलस्वरूप, देश अब 8 प्रतिशत से ऊपर की भारी आर्थिक वृद्धि दर्ज कर रहा है। यह वृद्धि संभवतः सरकार और उसके विभिन्न प्राधिकरणों द्वारा आपूर्ति की जा रही सार्वजनिक सेवाओं की गुणवत्ता और मात्रा में कमी द्वारा बाधित हो सकती हैं अतः सार्वजनिक सेवाओं की निवेश और सुपुर्दगी में सभी प्रकार से सुधार किया जाना है।

आर्थिक सुधारों के नए केंद्र बिंदु में सार्वजनिक क्षेत्र को सशक्त बनाना है ताकि वह सब कुछ कर सके जो उससे करना अपेक्षित है - अर्थात सार्वजनिक सेवा।